Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाक्षिक
सारिका

मई: अंक-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

chic-modithread शिक-मोदीथ्रेड

एम्ब्रॉयडरी, झालर-काम, बुनाई, क्रोशिया या दस्तकारी जाननेवाला कोई भी विजयी हो सकता है।

"नीडलवर्क प्रतियोगिता"

१½ लाख रुपयों से भी अधिक कीमत के पुरस्कार जीतिए!
भाग लेना आसान! जीतना आसान!
TCI SITA Holiday की मज़ेदार सैर!

लाजवाब शानदार राष्ट्रीय पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ अखिल भारतीय प्रविष्टि को शिक-मोदीथ्रेड नीडलवर्क क्वीन ट्रॉफी दी जाएगी। इसके अलावा TCI SITA द्वारा आयोजित सभी खर्चों सहित पूरे अमेरिका की २१ दिवसीय सैर का मज़ा भी मुफ़्त में— जिसका खर्च १६,५०० रुपये है.

प्रवेश मुफ़्त! कैसे भाग लें:

आपको सिर्फ़ पक्के रंग के रंगीन मोदी धागों से एम्ब्रॉयडरी, बुनाई, क्रोशिया, झालर-काम या दस्तकारी करनी है. कम से कम २० से.मी.×२० से.मी. आकार का कोई भी आकर्षक नमूना तैयार कीजिए. आप चाहे जिस वर्ग का नमूना भेजें, हर प्रविष्टि को सफ़ाई, रंगों के मेल और डिज़ाइन की सुन्दरता के आधार पर परखा जाएगा. पूर्ण विवरण, नियम और प्रतियोगिता के प्रवेश कूपन, समस्त मोदी धागों के विक्रेताओं, मोदी धागों की क्राफ्ट शॉप, मोदी धागों के डिपो और वितरकों के यहाँ तो मिलेंगे ही. साथ ही शिक पत्रिका के मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई और अगस्त १९७९ के अंकों में भी मिल जाएंगे. प्रत्येक प्रविष्टि के साथ इस्तेमाल किए गये धागों का लेबल और छपा हुआ प्रतियोगिता प्रवेश कूपन होना आवश्यक है.

जीतने के कई अवसर!

आपको जीतने के अधिक अवसर देने के लिए इस प्रतियोगिता को देश के १० क्षेत्रों में बाँट दिया गया है. हर क्षेत्र के लिए ८० पुरस्कार हैं. यानी कुल मिलाकर ८०० पुरस्कार और एक शानदार राष्ट्रीय पुरस्कार. जिसका चुनाव १० क्षेत्रों की प्रथम पुरस्कार प्राप्त प्रविष्टियों में से किया जाएगा.

८०१ पुरस्कारों में से कोई भी जीतिए!
(आपके क्षेत्र में ८० पुरस्कार)

दस प्रथम पुरस्कार FEDDERS LLOYD ZENITH 165 लीटर रेफ्रिजरेटर. हर एक की कीमत ४,२०५ रुपये.

दस द्वितीय पुरस्कार Oberoi Hotels की ओर से पति-पत्नी के लिए दस ५-दिवसीय छुट्टियों का आयोजन— उनके काठमांडू, गोवा, कश्मीर, दार्जिलिंग, शिमला और गोपालपुर-ऑन-सी स्थित आरामदायक होटलों में.

दस तृतीय पुरस्कार modifloor विश्व-कोटि के मशीन से बने कालीन. हर एक की कीमत २,५०० रुपये.

दस चतुर्थ पुरस्कार MERRITT सिलाई की मशीन. हर एक की कीमत १,५६५ रुपये.

दस पाँचवे पुरस्कार Tiffany किचन वेयर सेट. हर एक की कीमत १,००० रुपये.

साथ ही
modicotton के १५० सराहना पुरस्कार. सलवार-कमीज़ खुद ही बनाइये. हर एक की कीमत ६५ रुपये;
५०० प्रोत्साहन पुरस्कार— शिक पब्लिकेशन्स की ओर से प्रत्येक ४० रुपये कीमत के पुरस्कार.
१०० बोनस पुरस्कार— ब्राउन एण्ड पोलसन और RABEX के उत्पादक कॉर्न प्रॉडक्ट्स की ओर से प्रत्येक २५ रुपये कीमत के उपहार.

जल्दी कीजिए! प्रतियोगिता की अन्तिम तिथि ३१ अगस्त '७९.

शिक के ग्राहक बनें

वार्षिक चन्दे में २० रुपया बचाइये. न्यूज़स्टॉलों में १२ अंकों की कीमत— ६० रुपये, वार्षिक चन्दा— ४० रुपये. दो वर्ष के लिए— ७५ रुपये।

कृपया अपने पोस्टल ऑर्डर, ड्राफ्ट, मनी ऑर्डर शिक पब्लिकेशन के हित में बम्बई में देय होने के लिए बनायें।

To subscribe, mail this to
CHIC PUBLICATIONS,
89, Bhulabhai Desai Road, Bombay 400036
OR VIJAY STORES
231, Dr. D.N. Rd., Commissariat Bldg.,
Fort, Bombay 400001.

Name. ______
Address: ______
Enclosed Postal Order for Rs. ______
for ______ years subscription from ______

chic- सृजनात्मक, मनोरंजक फैशन पत्रिका

अपनी प्रविष्टि अपने क्षेत्र के मोदीथ्रेड डिपो में भेजें. पते की जानकारी के लिए नियम व शर्तें पढ़ें.
प्रथम शिक-मोदीथ्रेड बच्चों की कसीदाकारी प्रतियोगिता के लिए बच्चों की पत्रिकाएँ देखें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलती सिगरेट बिस्तर पर गिरने के लगभग पाँच मिनट के अन्दर ही पूरा सोने का कमरा आग की लपेट में आ सकता है।

अपने और अपने परिवार के लिये बेकार ख़तरा मोल लेने से क्या फ़ायदा?

अग्नि-सुरक्षा-जानकारी सूची

जहाँ सिगरेट पीनेवाला हो
वहाँ आग की संभावना बनी रहती है

१. नींद आ रही हो तो बिस्तर में या कहीं पर भी सिगरेट मत पीजिये।
२. सिगरेट के आखिरी भाग तक कश मत लेते रहिये। इससे उंगलियों के जलने पर वह हाथ से गिर सकती है।
३. ज़रा सी देर को भी जलती सिगरेट पड़ी मत छोड़िये।
४. सिगरेटों को शीशे, चीनी या धातु की अॅश-ट्रे में ही थोड़ा पानी रख कर बुझाइये।
५. सिगरेट के टुकड़ों को कूड़े के डिब्बों या रद्दी की टोकरियों में मत फेंकिये।
६. सिनेमाघर या लिफ़्ट के अन्दर, ट्रेन या बस में, किसी पेट्रोल स्टेशन पर या जहाँ धूम्रपान की मनाही हो, सिगरेट मत पीजिये।

लॉस प्रिवेन्शन एसोसिएशन समान विचारधारावाले लोगों के साथ मिलकर काम करना चाहती है और आपके सहयोग का स्वागत करती है। अधिक जानकारी के लिये कृपया लिखें—

LPA
सुरक्षैव समृध्दये

नुकसान रोकिये — समृद्धि बढ़ाइये
लॉस प्रिवेन्शन एसोसिएशन ऑफ़ इंडिया लि.,
वाईन हाउस, पी. एम. रोड, बम्बई-४०० ००१

CASLPA-7-244 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप हररोज़ का कामकाज फिरसे करने को उत्सुक हैं?

ग्लैक्सोज़-डी® आपको तुरन्त शक्ति देकर थकान मिटाता है।

ग्लैक्सोज़-डी से आप घर के काम-काज के लिए तैयार हो जाती हैं। क्योंकि ग्लैक्सोज़-डी आप को वह भरपूर शक्ति देता है, जो आप को थकान के बाद फिर से चुस्ती-फुर्ती के लिए चाहिए। डॉक्टरों की सिफारिश पाने वाला ग्लैक्सोज़-डी बहुत उच्च कोटि का ग्लूकोज़ है जो विटामिन-डी, कैल्शियम और फॉस्फरस से युक्त है।

ग्लैक्सोज़-डी आप की थकान मिटाता है और आप को ऐसी शक्ति देता है कि आप मज़े से घर का काम-काज करती रहती हैं।

ग्लैक्सोज़-डी®

सारे परिवार के लिए तुरन्त शक्ति का साधन

dCA/GL/54/HN/Rev

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

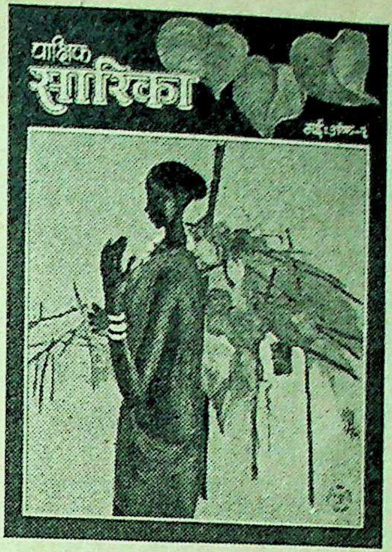

आवरण : बी. प्रभा

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष १९; अंक : २४२;
१ से १५ मई, १९७९

संपादक :
कन्हैयालाल नंदन
मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल
सज्जा : रवि शर्मा

सारिका

साक्षात्कार

12. सब पाठक एक ही तरह के नहीं होते : कुंवर नारायण से विनोद भारद्वाज की लंबी बातचीत

कहानियां

20. वह और मैं : कृष्ण बलदेव वैद
26. चीख : वेदराही
36. रोग मुक्ति : बल्लभ डोभाल
41. वक्त कटे रिश्ते : सूर्यकुमार जोशी
55. उसका तिकोन : सिम्मी हर्षिता
62. शाद्वल : ऋता शुक्ल

मील का पत्थर

28. वक्तव्य : विष्णु प्रभाकर
29. सांप जॉन स्टीनबेक

धारावाही उपन्यास

42. ताकि सनद रहे (समापन किस्त): राम कुमार भ्रमर

विशेष

52. आंखों देखी फांसी : गिरिजा शंकर

अन्य आकर्षण

8. पाठकों का पन्ना
10. जरिया-नजरिया
25. लघुकथाएं : अंतरात्मा : बाल कवि बैरागी
35. शिकार : अंजुम अब्बासी, सन्नाटा : बलबीर त्यागी
बेटे : सुरेश के अंजुम
39. तस्वीर बोलती है : रघुराय
49. गजल : अंबर
50. प्रसंगवश : महेंद्र कुलश्रेष्ठ
51. दीवाने आम : दीवाने खास : दर्शन लाल
59. गजल : जहीर कुरेशी
60. रोजनामचा : से. रा. यात्री
65. ग़ज़ल : ओम् प्रभाकर
66. रिपोर्ताज : अ. ना. मुद्गल
68. हलचल
70. पखवारे की पुस्तकें : डा. विनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों का पन्ना

नरेश मेहताः खच्चर और प्रतिबद्धता

सारिका के माध्यम से श्री नरेश मेहता से साक्षात्कार हुआ. उनके व्यक्तित्व को लेकर अभी तक जो थोड़ा बहुत भ्रम था, वह भी पूरी तरह दूर हो गया. अनेक अंतर्विरोधों से ग्रस्त नरेश जी के वक्तव्य उनकी समझ और सोच पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं.

नरेश जी की नजर में, 'कम्युनिस्ट आदमी को पसंद नहीं करते, उन्हें बोझ ढोने वाले खच्चर चाहिए.' बिल्कुल ठीक समझा है उन्होंने, कम्युनिस्ट आखिर उन 'खच्चरों' का समर्थन तो करेंगे ही जो नरेश जी के तथाकथित 'आदमी' की शोषकीय प्रवृत्ति का शिकार हैं.

नरेश जी के अनुसार 'प्रतिबद्धता हाईली पोलिटिकल वर्ड है'. अच्छा होता, यदि वे यह भी बतला देते कि अनपोलिटिकल क्या है? क्या 99 प्रतिशत हिंदी लेखकों को लेखक मानने से इनकार करना अनपोलिटिकल है? 'राम' को जनता से छीनने की बात करना और उनके लिये अनाम रूप से गीत लिखने की इच्छा रखना, क्या एक तरह की पालिटिक्स ही नहीं है? 'खच्चरों' की प्रतिबद्धता को नकार कर मनुष्यता और मिट्टी से जुड़ने की इच्छा रखना भी पालिटिक्स का ही तो हिस्सा है.

▣ **अनिल जनविजय, दिल्ली**

भारतीय व्यंग्यकार अच्छा लिख रहे हैं

इस वर्ष सारिका द्वारा 'व्यंग्य विशेषांक' की अचानक घोषणा/योजना और अंक देख/पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ. यों तो सभी पत्रिकाओं के व्यंग्य विशेषांक होली के अवसर पर निकलते हैं लेकिन उनकी सीमाएं प्रायः फलां जगह की होली/जैसे लेख, कैसे कैसे खेली हमने होली/जैसी परिचर्चाओं तक ही हैं गोया ये ही व्यंग्य की पराकाष्ठा हो. लेकिन 'व्यंग्य विशेषांक' के माध्यम से 'सारिका' द्वारा समकालीन गंभीर-सटीक व्यंग्य साहित्य को प्रकाशित करने का प्रयास निःसंदेह एक मिसाल है.

प्रस्तुत अंक की उल्लेखनीय रचनाएं रवींद्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, अशोक शुक्ल, और नरेंद्र कोहली की हैं जो रोज़-मर्रा के जीवन से संबंधित छोटी-छोटी घटनाओं पर भी चाशनी से सराबोर व्यंग्य के छींटे देने से नहीं चूकती. अंजनी चौहान के कुत्तों के प्रसंग के लिए अंजनी भाई को साधुवाद कि उन्होंने उस प्रसंग को छेड़कर कई तरह के कुत्तों का पर्दाफाश किया है.

अंक की उर्दू और विदेशी रचनाओं के अनुवादों ने निराश किया है और इन्हें पढ़कर यह निश्चित लगा कि भारतीय व्यंग्यकार कहीं अधिक अच्छा लिख रहे हैं अतः और भारतीय व्यंग्य रचनाओं का समावेश क्यों नहीं? उम्मीद की जानी चाहिए कि कम से कम सारिका व्यंग्य साहित्य के साथ अन्य पत्रिकाओं की भांति सौतेला व्यवहार नहीं करेगी और अपने प्रत्येक अंक में 2 या 3 व्यंग्य रचनाओं का समावेश करेगी.

▣ **श्रीराम आयंगार, शहडौल, म. प्र.**

दस सेकंड के लिए भी नहीं

'संवाद : **'जूनूं में एक शाम'** आपने नामों का उपयोग किया, संवाद का नहीं. आप क्या करें...! ...श्री श्रीलाल शुक्ल, श्री लोचन बख्शी की कहानियां बहुत अच्छी हैं..... **घोड़े का नाम घोड़ा** में दो भूलें रह गयी हैं. घोड़ा...अपनी नस्ल के बारे में कुछ नहीं कहता! ... घोड़े को घोड़ियों का 10 सेकेंड के लिए भी ख्याल नहीं आता...ताज्जुब है, इतनी बारीक बुनावट में ये दो छिद्र कैसे रह गये? मार्च : अंक-दो बधाई देने लायक है. पिछले किसी अंक में श्री रमानाथ अवस्थी का जोशीजी पर स्केच पढ़ा था, अति उत्तम था.

▣ **ललित, औराई, वाराणसी**

जब से घूमी है ज़मीं...

सारिका के व्यंग्य विशेषांक में अं... अंतिम पुस्तक (आखिरी किताब) ... भूगोल के पाठ को पढ़ा. गैलीलियो ... पृथ्वी के चारों तरफ सूर्य चंद्रादि के ... की मान्यता निर्मूल प्रमाणित किये ... पर एक शेर याद आ गया.

आसमां गर्दिश में था जो पुरसु...
कि...

जबसे घूमी है जमीं, हर ...
चक्कर मे...

▣ **सुरेश चतुर्वेदी, लखनऊ**

मुखपृष्ठ और मर्दुमशुमारी

हिंदुस्तान की जनसंख्या में, ... पुरुष हैं उतनी महिलाएं भी. यदि ... मंशा मात्र पुरुषोचित आकांक्षाओं ... तृप्त करना है, तो ठीक है. आकर्षण ... रीत लिंगों में होता है. इस नाते ... पाठकों का भी ध्यान रखें. उनके ... पुरुषों को भी मुखपृष्ठ पर स्थान ...

▣ **बी. एल. साहू, सिवनी (म...**

मखमल के पैबंद

'सारिका' का कलेवर जितना ... आप ढाल रहे हैं उसकी आत्मा ... उतना ही महत्त्व दें तो क्या ही सुं... लेकिन यह तब होगा जब आप ... देखेंगे 'बनिया' नहीं. उतनी फूहड़ ... नियों पर उतना सुंदर चित्रांकन ... मखमल के पैबंद जैसा है.

▣ **संजीव, कुलटी**

एक निवेदन और

'सारिका' को अपने वी.आई... विज्ञापित करने के बारे में साव... पूर्वक विचार करना चाहिए. जनसा... अपने जीवन की तस्वीरें 'सारिका' ... आईने में देखना चाहता है.

एक निवेदन और... हास्य ... प्रसंग सिर्फ बुद्धिजीवियों की बपौती ... है. जनसाधारण की अभिव्यक्ति ... करने वाली पत्रिका को ऐसे ... सामान्य जन जीवन से भी ... चाहिए.

▣ **मोहम्मद आदिल, म. प्र.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...सरा आयाम

...रिका का मार्च अंक–2 देखा! काफी ...तराल के बाद आवरण पृष्ठ अच्छा ...गा! शृंगार-सौंदर्य के विपरीत नारी ... एक दूसरे आयाम को प्रतिबिंबित ...रता है. धीरेंद्र अस्थाना की कहानी **...च का आदमी'** एक सांस में पढ़ गया ... कथानक की गति भी यही है! कहानी ...हीं वरन् विचार-यात्रा है, जो आज का ...क्षित युवा हर रोज पूरी करता दिखता ... मध्यवर्गीय युवा-चेतना से यह खुली ...तचीत कहीं गहरे मन को छूती है.

... विजी रावल, कानपुर

...बुनियाद शिकायत

...वरी अंक–2 की 'सारिका' में ...त दिनों बाद कुछ अच्छी कहानियां ...े को मिलीं. सबसे महत्त्वपूर्ण तो ...क्रम सिद्धार्थ की **ब्लेक आउट** ही ... पिछले कुछ सालों से इनकी जो ...नी दिमाग में अटकी हुई है वह है **...पुरुषों की वापसी.** बहरहाल, होटल ... सारी घटना, सोल्जेनित्सिन के किसी ...ट-मेयर जैसी अयथार्थ होते हुए भी ...वशाली है जिसमें नेता को कम्मिसार ... भूमिका दे दी गयी है. यह कहानी ... वातावरण के लिए इस शीर्षक को ... करती है. दूसरी बंगलाक्रांत नरेश ...ा की **आबार एशो.** बहुत दिनों बाद ...जी की यह रचना मुझे अच्छी लगी. ...नरी घपलों को छोड़कर मैं उनकी ...ता का प्रेमी हूं. मगर इसी काव्य-...नी के कारण कहानियां गले नहीं ...र पाता. तीसरी कहानी आशीष ... की है. इसलिए इन तीनों को मेरी ... से बधाई पहुंचा देना.

...ाशा है स्वस्थ और सानंद हो.

...: इधर दो और महत्त्वपूर्ण कहानियां ... को मिलीं. मार्च 'सारिका' में ...राज किशोर की **घोड़े का नाम घोड़ा** ... संचेतना में मुंजुल भगत की 'मृत्यु ...ओर' मेरा ख्याल है कि अगर तीन-... महीनों में तीन-चार कहानियां भी ...स्तर की मिल जायें तो यह शिकायत ...बेबुनियाद हो जाती है कि आजकल ...ी कहानियां नहीं लिखी जा रहीं.

...राजेंद्र यादव, दिल्ली

मिट्टी की गंध

बाल्यकाल में मईया के मैले आंचल से आती हुई ममतासिक्त गंध युवावस्था में 'हीराबाई' की चुनरी से आती हुई इत्र की मादक खुशबू और अंतकाल में चेतना को लुप्तप्राय-से करते, अस्पताल में 'एनास्थेटिक' के तेज भभके. कितनी-कितनी गंधों को 'रेणु' ने महसूस किया था, भोगा था. जब उसकी साहित्यिक यात्रा शुरू हुई तो वह जीवंत पात्रों का एक काफिला लेकर, धूल उड़ाता, नग्मे गाता चल पड़ा. कामयाबी के कई मकाम उसने तय किये परंतु अंत तक वह अपनी मिट्टी से जुड़ा रहा. उसकी रचनाओं में उसी मिट्टी से सने शब्दों की गंध है. कुछ लोग पूछते हैं कि उन्होंने ऐसे शब्द इस्तेमाल किये जो 'डिक्शनरी' में नहीं हैं. मां रोते हुए बच्चे को प्यार से चुमकारती है और बच्चा चुप हो जाता है.—मां के मुंह से निकले वे शब्द किस 'डिक्शनरी' में हैं? क्या लिखा है उसका अर्थ? परंतु बच्चा चुप हो गया, क्योंकि मां के शब्दों को समझने से ज्यादा उसने उन्हें महसूस किया. अंग्रेजियत से रंगे हुए ये लोग जो बोतल का दूध पीकर बड़े हुए हैं—मां के दूध का स्वाद क्या जानें? आयाओं की गोद में खेलकर बड़े हुए लोग—मां का चुमकार क्या समझें? यहां तो—

किस शान से जगमग कपड़ों में
आसीन विदेशी छैला है.
'वेदी' की चादर मैली सी 'रेणू'
का आंचल मैला है.

'सारिका' को आखिर 'हिरामन' की याद आ ही गयी. शत-शत बधाई.

▣ देव नारायण सिंह, अलीगढ़

जीवन की फिल्म

और आखिरकार 'सारिका' का 'रेणु-स्मृति अंक' आ ही गया. जिसका मैं महीनों से इंतजार कर रहा था. यह आपके कुशल संपादन का कमाल है कि पढ़ते हुए ऐसा महसूस हो रहा था मानो रेणु के जीवन पर बनायी गयी कोई फिल्म हो. 'रचनाकार की विरासत' (?) में समाज की जिन दुर्बलताओं पर आपने प्रकाश डाला है, वह हमारी अस्वस्थ मानसिकता को सोचने को विवश कर देती है. 'प्रण' ही रेणुजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है. इस संग्रहणीय अंक के लिए आपको इस विद्यार्थी का हार्दिक धन्यवाद!

▣ राकेश शर्मा, म. प्र.

गुलफ़ाम ज़िंदा है

'सारिका' रेणु-स्मृति अंक में प्रकाशित हर एक रचना काफी अच्छी है. इस पत्र के माध्यम से अनेकानेक धन्यवाद!

'रेणु' के संबंध में दी गयी जानकारी रुचिकर है, किंतु उनकी बीमारी के बारे में पढ़कर बहुत दुख हुआ. रचनाकार की विरासत "अब सोचती हूं तो लगता है. . . से लेकर 'एक गुलफाम जो हिंदी कथा-साहित्य में आज भी जिंदा है." तक पढ़ने में हृदय छलनी होता चला गया. तब की वह गर्जना, "मैं फणीश्वरनाथ रेणु हूं. पहचाना या नहीं?" मैंने तो सुनी नहीं, केवल 'सारिका' में पढ़ी है लेकिन बावजूद इसके अभी तक मेरे कानों में गूंज रही है.

▣ शरद नारायण नीमें, मंदसौर, म.प्र.

भावी शोध के लिए

'रेणु-स्मृति अंक' आज ही आया है यहां. कुछ चीजें पढ़ी हैं. इतनी मेहनत, इतनी लगन और इतना क्षमतावान संपादन: संपादकीय टिप्पणी की साफ और सुनिश्चित बातें. . . बधाई! अंक भावी शोध के लिए बेहद उपयोगी रहेगा.

▣ ओम प्रभाकर, भिंड

रेणु-स्मृति अंक पर देश के हर कोने से अपने सुधी पाठकों के इतने अधिक प्रशंसा पत्र मिले हैं और प्रतिदिन मिलते जा रहे हैं कि यदि हम पत्र लिखने वाले पाठकों के सिर्फ नाम ही प्रकाशित करें तो इस स्तंभ की समूची पृष्ठ सीमा भी इस काम के लिए छोटी पड़ जायेगी. हम अपने उन सभी पाठकों के प्रति कृतज्ञ हैं. अगले अंक में हम उनमें से अधिक से अधिक पत्र प्रकाशित करने की कोशिश करेंगे.–(सं.).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये खूनी रात के मंजर

मुझे लगने लगा है कि यह वर्ष अंतर्राष्ट्रीय फांसियों का वर्ष है. पिछले कुछ महीनों के अखबार किसी-न-किसी देश के किसी-न-किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को फांसी पर लटकाने या गोली मारकर खत्म कर दिये जाने की खबरों से रंगे पड़े हैं. ऐसा नहीं कि यह कोई नयी बात हो. आदिम काल से अस्तित्व, सत्ता और व्यवस्था के नाम पर ऐसा होता आया है. मुझे 'सरवाइवल आफ द फिटेस्ट' वाले सिद्धांत से कुछ ऐसी ही स्थितियों का आभास मिलता रहा है, जिसे शायद कुछ स्वार्थी 'शक्ति समूहों' से जोड़ कर 'सार्वभौम और शाश्वत सत्य' के रूप में प्रतिष्ठित मान लिया गया. समूचा मानव इतिहास आदिकाल से लेकर आज तक मात्र 'सत्ता और शक्ति समूहों' के गिर्द घूम रहा है. यह सही है कि 'दंड' और 'पुरस्कार' किसी भी व्यवस्था के लिए निहायत जरूरी चीजें हैं लेकिन उनसे भी जरूरी चीज है इंसानी ज़िंदगी. किसी को जिंदगी देना बहुत बड़ी बात है और उससे भी बड़ी बात है इंसान में उस जिंदगी के सही इस्तेमाल का माद्दा पैदा करना. सही इस्तेमाल और सुधार का अवसर दिये बगैर किसी से ज़िंदगी छीन लेना आज के सभ्य और विकसित कहे जाने वाले समाज के लिए किसी भी नजरिये से फख्र की बात नहीं हो सकती. मात्र "दंड

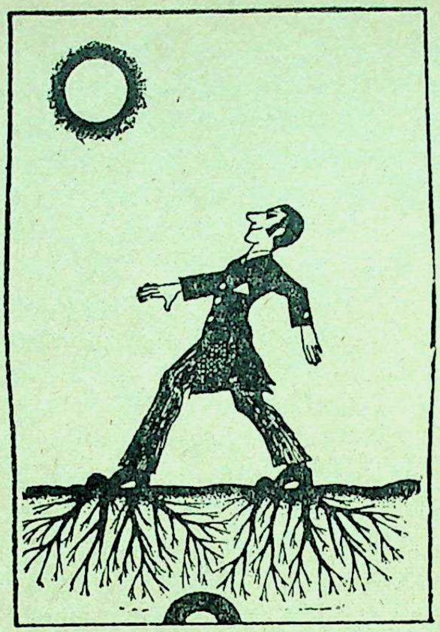

ज़रिया-नज़रिया

और पुरस्कार' के सहारे चलने वाले समाज और गले में चारे की बाल्टी लटकाकर डंडे के सहारे हांके जाने वाले बैल में कोई फर्क नहीं होता. यह फर्क तब तक नहीं हो सकता जब तक उनमें दुख-दर्द के एहसास और मानवीय संवेदनाएं न जुड़ जायें.

व्यक्ति, समूह या देश की मानसिकता से मानवीय संवेदनाएं जितनी कम होती ज़ायेंगी, 'फांसियों' और 'हत्याओं' की स्थितियां उतनी ही ज्यादा पैदा होती जायेंगी. सवाल यह नहीं है कि फांसी किसे दी गयी या किसकी हत्या की गयी, सवाल यह भी नहीं है कि फाँसी या हत्या क्यों हुई? सवाल यह है कि क्या इंसानी अक्ल इतनी बोदी और कुंद हो गयी है कि अमन और चैन अथवा सुधार के लिए कोई और तरीका, कोई और रास्ता तलाश नहीं सकती? यह इंसानी अक्ल का ही

कमाल है कि सजाये-मौत
नये तरीके बड़ी आसानी
होते रहे. पत्थरों से
तीर-तलवार या कटार
जमीन में आधा गड़वाकर
कुत्ते छोड़ना, हाथी के पांव
डालना, दीवार में चिनवा
शूली चढ़ाना (भालों या
किसी चिकनी, नुकीली
बैठा देना), पहाड़ से
खौलते तेल या आग में
तोपदम करना, गोली
गैस चेंबर में बंद कर देना
के फंदे में लटका देना या
कुर्सी पर कस देना . . .
भी कितनी यातना प्रक्रिया
जिनका हमें और आपको
तक नहीं हो सकता. लेकिन
इंसानी अक्ल कोई ऐसा
रास्ता ईजाद नहीं कर सकी
सहारे आदमी को इस
और शर्मनाक सजाये-मौत
इंसानी हादसे से बचाया

यह सही है कि आज
दुनिया के इंसानियतपसंद
सजा के खिलाफ आवाज
हैं. कुछ सत्ताकेंद्रों और
हदों से भी ऐसी आवाजें
हैं. लेकिन लगता है कि
नक्कारखाने में तूती की
से ज़्यादा अहमियत नहीं

'सुख-शांति के लिए
के हिमायती जब यह कहते
सजा तो नहीं हटायी
लेकिन 'मरने की तकलीफ
कम करके मौत को और
बनाया जा सकता है
सजाये-मौत भोगने
साइनाइट की सुई चुभो
आदि—तब उनकी अक्ल
भी आती है और रोना
यह नहीं है कि आपने
आसान मौत दी या
मौत दी, सवाल यह है
इंसान से उसका ज़िंदा
बुनियादी हक छीना गया
को बरकरार रखते हुए
सजा दी जा सकती है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून की नज़र में कोई छोटा-बड़ा हो या न हो लेकिन मौत की नज़र में निश्चित रूप से कोई छोटा-बड़ा नहीं होता. मौत कुत्ता घसीटी की हो या शहादत की, बुनियादी तौर पर उसका सीधा संबंध ज़िंदगी के टूट जाने का होता है और अक्सर किसी एक ही ज़िंदगी से नहीं होता कई ज़िंदगियों से होता है—वे ज़िंदगियां चाहे परिवार की हों या राष्ट्र की. और किसी भी कानून के पास किसी खास ज़िंदगी का हल तो हो सकता है लेकिन उससे जुड़ी कई कई ज़िंदगियों का कोई हल नहीं होता. यही वजह है कि कभी-कभी किसी एक व्यक्ति की हत्या या कानूनी मौत कई मौतों का कारण बन जाती है. जैसा कि अभी हाल में अपने एक पड़ोसी देश में हुआ या आये दिन तीसरी दुनिया के कई देशों में होता रहता है.

बात फिर वहीं—'अंतर्राष्ट्रीय फांसियों' पर आ गयी. ये फांसियां-चाहे पाकिस्तान में हुई हों, चाहे ईरान में, चाहे फिलिस्तीन में या युगांडा में अथवा किसी अन्य देश में, उनके अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों को नज़र-अंदाज़ नहीं किया जा सकता और इन प्रभावों का सीधा संबंध इंसानी ज़िंदगियों से होता है.

मौत की दहशत और उस दहशत का दर्द एक भुक्तभोगी ही जान सकता है लेकिन वह उसे पूरी तरह बयान नहीं कर सकता. सारिका ने इसी अंक में पृष्ठ 52 पर एक 'आंखों देखी फांसी' का दस्तावेज प्रस्तुत किया है. उस दस्तावेज से यह बात तो स्पष्ट है कि जुनून में दूसरों की ज़िंदगियां छीनने वाला आदमी जब अपनी ज़िंदगी को छिनते महसूस करता है तब वह अपने से जुड़ी ज़िंदगियों के लिए तड़प उठता है. यही ज़िंदगियों के प्रति मानवीय संवेदना पैदा करती है. जितनी ज्यादा ज़िंदगियों के प्रति यह होगी, उतनी ही मानवीय उतना अधिक व्यापक, विस्तृत और प्रभावकारी होगी. उसी व्यापक और विस्तृत प्रभाव की संवेदना के तहत हम आज भी ईसा, सुकरात और गांधी के साथ जुड़े हुए हैं क्योंकि उनकी तड़प दुनियाभर की ज़िंदगियों के लिए थी. मैं नहीं समझता कि आज भी 'खून की सजा खून' वाला जहांगीरी इंसाफ अपनी कोई अहमियत रखता है.

▣

मौत की सजा के सिलसिले में ही कुछ बातें और भी हैं जो मन को कचोट रही हैं. जब भी वक्त आया है सारिका ने उन बातों को उठाया है. पिछले दिनों हमने जलते हुए ईरान और सुलगते हुए अलीगढ़ की तस्वीरें पेश की थीं. मजहब के नाम पर इंसानी नफरत की पैदावार से सुलगती और हहराती लपटें हिंदुस्तान में अक्सर नजर आ जाती हैं. अलीगढ़, लखनऊ, संभल, भिवंडी या जमशेदपुर, कहीं भी ये लपक कर इंसानी ज़िंदगी पर टूट पड़ती हैं और जब ये चिटक-चिटक कर टूटती हैं तो हिंदू या मुसलमान, सिख या ईसाई, अमीर या गरीब, किसी में भेद नहीं रखतीं. इनमें झुलसने वाला या जल मरने वाला न हिंदू होता है, न मुसलमान, वह सिर्फ इंसान होता है. इंसान जलता है और इंसानियत के खूबसूरत चेहरे पर फफोले फूटते हैं और वर्षों तक इंसानी खून के जलने की बू, चमड़ी की चिरांध पूरे माहौल पर छायी रहती है और वह आग ठंडी भी नहीं हो पाती कि एक रात फिर हमें दिखाई देता है कि किसी गांव, किसी कस्बे या किसी शहर के दामन से फिर वही लपटें उठ रही हैं. आखिर ये जहरीला धुआं उगलती लपटें कब तक बेकसूर ज़िंदगियों को 'सजाये-मौत' देती रहेंगी? कोई राजनीतिक षड्यंत्र जब मौत का यह घिनौना और शर्मनाक खेल खेलता है तो सोचना लाजिमी हो जाता है कि आखिर कब तक हम ऐसी हत्यारी राजनीति के शिकार होते रहेंगे?

बच्चे—जो मुल्क की अमानत होते हैं, औरतें—जो देश की इज्जत होती हैं, युवक—जो देश की हिफाजत होते हैं और बूढ़े—जो गुजरे जमाने का इतिहास होते हैं—सांस्कृतिक दस्तावेज के चश्मदीद गवाह होते हैं, कब तक इन सामूहिक हत्याओं का शिकार बनते रहेंगे? हम नहीं जानते कि यह सब करते हुए हम किस सभ्यता, किस संस्कृति और किस वैचारिकता का वहन करते हैं. पता नहीं हम क्यों भूल जाते हैं कि पहले हम इंसान हैं, बाद में कुछ और.

यह सब लिखते हुए मुझे मजाज़ की याद आ रही है. एक बार मजाज़ साहब किसी मुशायरे में गये थे. मुशायरे के स्वागतद्वार पर लिखा था—"मजहब के नाम पर लड़ना हिमाकत है" इस इबारत को पढ़ते ही मजाज़ साहब गमजदा होकर बोले थे—"और हिमाकत के नाम पर लड़ना मजहब है!" सच, क्या ये दंगे किसी हिमाकत के नाम पर नहीं हैं? क्या ये खूनी रात के मंजर इंसानियत के चेहरे पर खुदे बदनुमा दाग नहीं हैं? मैं बार बार सोचने पर मजबूर हो रहा हूं—क्या कभी हम आदिम इतिहास की आदमखोर काली गुफाओं से बाहर निकल सकेंगे? पता नहीं इंसानी ज़िंदगियों के लिए ये 'सजाये-मौत' का लंबा सिलसिला कब खत्म होगा? मैं सोचता हूं, दिल से चाहता हूं और दुआ भी करता हूं (अगर दुआओं का कुछ असर होता हो तो) कि यह जल्दी खत्म हो. . . . इसी आशा के साथ सारिका का यह अंक सजाये मौत के खौफनाक असर को झेलती हुई इंसानी ज़िंदगियों के नाम समर्पित है. (जमशेदपुर के खूनी माहौल की आंखों देखी दंश-कथा सारिका के जनः अंक एक में प्रस्तुत की जायेगी.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार

सब पाठक एक ही तरह के नहीं होते

साक्षात्कारों के क्रम में आशापूर्णा देवी, निर्मल वर्मा, अज्ञेय, मन्नू भंडारी, गाडगील, भगवती चरण वर्मा, भीष्म साहनी, राही मासूम रज़ा, कृष्णा नरेश मेहता तथा श्रीलाल शुक्ल के बाद इस बार साक्षात्कार कुंवर ना कवि-कथाकार कुंवर नारायण से यह बातचीत लखनऊ में उनके घर पर पहले 90 मिनट के कैसेट पर इसे रेकार्ड किया गया, फिर बाद में लगभग तक इसे संपादित-संशोधित किया गया. यानी हर सवाल-जवाब के पीछे सवाल-जवाब छिपे हैं. कुंवर नारायण अपने बचपन और युवावस्था के बहुत कम बात करते हैं. बहुत कोशिश करके ही उनसे इस बारे में कुछ सकता है. 'मीडिया-शाई' होने की वज़ह से वे टेपरेकार्डर या टेलीविज़न भी कोई बातचीत करने के लिए उत्सुक नहीं रहते. यहां प्रस्तुत बातचीत मेहनत करके आगे बढ़ायी जा सकी. पर कुंवर नारायण से किसी भी का सबसे बड़ा 'आनंद' इसी में है कि वे अपने काम में एक बार लग जाते उसमें पूरी तरह व्यस्त हो जाते हैं. उनके काम करने की जगह का वर्णन निक की प्रयोगशाला के ही शायद सबसे नज़दीक बैठता है. और यह भी इसी प्रयोगशाला की काटछांट के बाद पाठकों तक पहुंचायी जा रही है.

'कमान-कमर नवाब के झुके हुए
शरीफ़ आदाब-सा लखनऊ'
और उस लखनऊ में कुंवर नारायण

कुंवर नारायण से विनोद भारद्वाज की लंबी बातचीत

आपके बचपन के बारे में जानना चाहता था--बहुत शुरू की स्मृतियों के बारे में.

पारिवारिक जीवन के प्रति एक खास तरह कृतज्ञ महसूस करता हूं, आज भी. आरंभ में, साल भर के अंदर ही, सबसे पहले मां और फिर बड़ी बहन—जिनसे मुझे मां के न रहने पर बहुत सहारा मिला था—की असमय मृत्यु ने जिस तरह का भयानक आतंक और अकेलापन मेरे जीवन में भर दिया था उसे अगर एक सम्मिलित परिवार का सगापन न मिलता तो जीवन मानसिक स्तर पर बिखर भी जा सकता था. हम सब चचेरे भाई-बहन अपने बड़े चाचा के साथ लखनऊ में एक साथ रहे. इस साथ रहने ने मेरे अंतर्मन में साथ रहने के मूल्य को गहरे स्थापित किया. आज जो हम अपने सामाजिक जीवन में एक खास तरह का बेगानापन (एलियनेशन) अनुभव करते हैं उसके पीछे कहीं-कहीं पारिवारिक जीवन का टूटना भी एक कारण है. परिवार एक ऐसा परिवेश है जिसमें हम सबसे पहले परायी उपस्थिति को आत्मीय करके ग्रहण करना सीखते हैं.

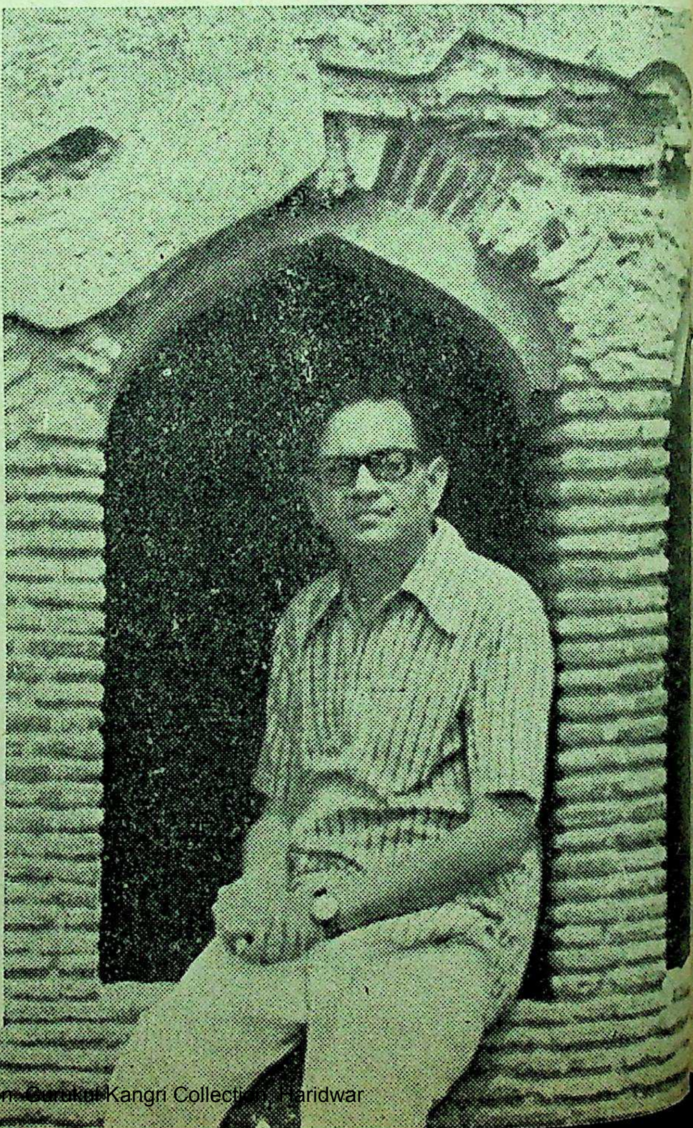

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन में आपका व्यक्तित्व (मोटे तौर पर) बहिर्मुखी था अथवा अंतर्मुखी?

अंतर्मुखी और संकोची स्वभाव का था. इसीलिए स्कूली जीवन को लेकर कभी भी सहज नहीं हो पाया. आज भी, अक्सर चाहते हुए भी, आगे बढ़कर बहुतों के साथ आसानी से घनिष्ठ नहीं हो पाता. . .

बहुत शुरू में जो आपने किताबें पढ़ी हों—जो याद रह गयी हों, उन्होंने कैसा असर डाला था?

साहित्य में रुचि के साथ किताबों से अधिक कुछ व्यक्तित्वों की याद मन में ज्यादा है. पढ़ने-लिखने का शौक शुरू से ही था लेकिन घर में ऐसा वातावरण नहीं था कि इसको अधिक प्रोत्साहन मिलता—बल्कि कुछ विरोध-सा ही रहता था. मुझे सहारा मिला तो आचार्य नरेंद्रदेव और आचार्य कृपलानी की ओर से जिनका हमारे घर पर काफी आना जाना था. उन दिनों नरेंद्रदेव जी ने अप्टन सिंक्लेअर के 'वर्ल्ड्स एंड' सीरीज के उपन्यास पढ़ने को कहा था जो मुझे बहुत पसंद आये थे. इंटर के बाद बीमारी के कारण पढ़ाई छोड़कर एक वर्ष नरेंद्रदेव जी के साथ जुड़ा रहा. उनसे बौद्ध-दर्शन से लेकर मार्क्सवाद पर बात सुनना अपने आप में एक अनुभव भी था और शिक्षा भी.

इस बीच आपको ऐसा भी लगता था कि आपको कुछ लिखना है?

एम.ए. मैंने अंग्रेजी में किया था, पर उस समय तक मैंने यह नहीं सोचा था कि कभी साहित्य लिखूंगा. रघुवीर सहाय एम.ए. में मेरे साथ पढ़ते थे. उन दिनों अज्ञेय का 'हरी घास पर क्षण भर' निकला था—शायद रघुवीर ने उसकी कुछ कवितायें मुझे पढ़कर सुनायी थीं. तब लगा था कि मेरी रुचि इस दिशा में हो सकती है. वैसे अंग्रेजी में कुछ कविताएं मैंने यूनिवर्सिटी के दिनों में लिखी थीं.

आलोचना-लेखन का काम आपने कब शुरू किया. 'युगचेतना' के दिनों में आपने कई संपादकीय अपने नाम से दिये ही थे.

जहां तक याद पड़ता है 1954 में छायावाद के प्रमुख चार कवियों के चार अध्ययन अंग्रेजी में लिखे थे जो उस समय छपे भी थे. उसके बाद 'युगचेतना' में संपादकीय तथा अन्य प्रकार के समीक्षात्मक निबंध भी लिखता रहा. यह जरूरत पत्रिका निकालने के साथ जुड़ी थी. लेकिन उसके बाद भी समीक्षा में रुचि बनी रही और जब भी मन लायक विषय, या पुस्तक, मिल जाती तो समीक्षा लिखना सार्थक लगता था.

'युगचेतना' के दिनों में साहित्यिक-राजनीतिक वातावरण के बारे में कुछ बतायें. वह आपको आज के वातावरण से किस तरह से भिन्न लगता है?

तब और आज की राजनीति को दो तरह से सोचा जा सकता है : एक तो, राजनीतिक विचारों को केंद्र में रख कर, और दूसरा व्यावहारिक राजनीति की नैतिकता को. समाजवाद के विचार-पक्ष पर उस समय गहरा चिंतन होता था, उसके अनेक महत्वपूर्ण पहलू थे जिन पर वाद-विवाद होते थे. यशपाल जी के घर पर संघ की बैठकें हुआ करती थीं जिनमें मार्क्सवादी, अर्ध-मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी सभी तरह के लेखक शामिल होते थे और खुलकर बातचीत होती थी. . . आज हम साहित्य पर जिस किस्म की राजनीति का दबाव महसूस कर रहे हैं, या यों कहें कि राजनीति के मार्फत जिस प्रकार की मानसिकता का दबाव महसूस कर रहे हैं वह मुझे आश्वस्त नहीं करता. राजनीति साहित्य के लिए खतरा हो इससे ज्यादा खतरनाक यह बात है कि साहित्य उसके लिए प्रासंगिक ही न रह जाये. साहित्य के लिए यह एक तरह की सांस्कृतिक बर्बरता से सामना है कि एक देश की राजनीति में उसके लिए किसी प्रकार की वैचारिक चुनौती न बचे. गांधी, नेहरू, नरेंद्रदेव, लोहिया आदि का चिंतन अगर एक स्तर पर राजनीति के लिए महत्व रखता था तो दूसरे स्तर पर साहित्य के लिए भी.

उन दिनों मार्क्सवाद के प्रति आपका आकर्षण था. उस आकर्षण के पीछे क्या कारण थे?

एक विचारधारा के रूप में मार्क्सवाद के कई पक्षों ने मुझे आकर्षित किया है—अब भी करते हैं और उन पर बराबर सोचता रहता हूं. लेकिन मार्क्सवाद की राजनीति

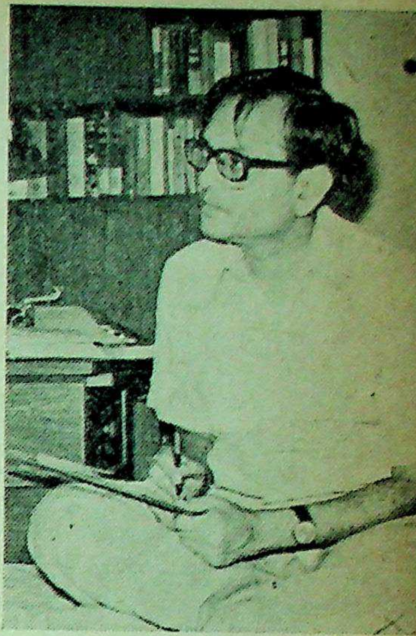

लेखकीय प्रयोगशाला और लेखक

बहुत आश्वस्त नहीं करती. मार्क्सवादी दर्शन को देश की राजनीति से अलग करके सोचना जरूरी है. रूस या चीन या कोई भी देश जिन तरीकों से मार्क्सवाद को अपने यहां लाता है उन तरीकों का अध्ययन मार्क्सवाद के अध्ययन से अलग बात है. एक विचारधारा के रूप में मार्क्सवाद ने लगभग सभी देशों के सामाजिक-आर्थिक चिंतन पर गहरा असर डाला है, लेकिन रूसी या चीनी राजनीति ने बिल्कुल भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं को भी जन्म दिया है.

उन्हीं दिनों आप सोवियत संघ भी गये थे और जिन लोगों के साथ गये थे उनमें से अधिकांश साम्यवाद से प्रभावित लेखक थे. उस विदेश-यात्रा ने आप पर किस तरह का असर डाला था?

लेखक के लिए वहां लोगों के मन में विशेष आदर और आशा का भाव था—यह आश्वस्त भी करता था और उत्साहित भी—लेखक होना वहां मुझे पहली बार एक जिम्मेदारी और आकर्षण दोनों लगा. पोलैंड में कई लेखकों से मिलना हुआ. इस बात पर काफी बहस होती थी कि मास्को द्वारा ताल्स्तोय, दोस्तो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्स्की, काफ़्का जैसे लेखकों को न छापना कहां तक उचित है! इनका लेखन अपने समय का, मानव-स्वभाव का मूल्यवान दस्तावेज़ है—इस सबूत को रोशनी में ही न आने देना कहां तक जायज़ है! साहित्य अपने समय का गवाह और समीक्षक होता है. उसका काम राज्य की तरफ़दारी करना नहीं, अपने समय को सही-सही प्रतिबिंबित करना है. साहित्य की सुरक्षा और स्वतंत्रता दोनों ज़रूरी है. उस गवाह को तोड़ने या भ्रष्ट करने की कोशिश, या उसे डराने-धमकाने की कोशिश एक व्यवस्था के इरादों और नेकनीयती में शक पैदा करता है. अगर एक व्यवस्था साहित्य या विचारों की स्वतंत्रता से डरती है तो यह डर ज़रूर कहीं न कहीं उसकी अपनी कमज़ोरी या खोट, या दोनों, को प्रकट करता है.

आपने एक बार बताया था कि पोलेंड में नाजिम हिकमत से आप मिले थे.

पोलेंड में सबसे अधिक समय रहा और वह कई मानों में मेरे लिए सुखद और महत्वपूर्ण रहा. वहां मुझे लगा कि लोग मुझसे अधिक घनिष्ट और खुले रूप से मिले. उन्हीं दिनों वहां नाजिम हिकमत वार्सा आये हुए थे. कुछ समय पहले ही जेल से छूटे थे. उनके व्यक्तित्व की और कविताओं की बहुत चर्चा थी. मेरे वहीं के एक मित्र श्री त्रेपका ने नाजिम हिकमत से मेरी मुलाकात करायी. वहीं पाब्लो नेरूदा से भी एक उड़ती-सी मुलाकात हुई थी, लेकिन हिकमत के साथ काफी समय बिताने का मौका मिला—जो मेरे लिए उस उम्र में माने रखता था. कॉफी हाउस में, बाहर भी, उनसे अक्सर बात होती रहती थी, दुभाषिये द्वारा. लेकिन उनका बात करने का ढंग, उत्साह और आशावादिता मुझे बहुत आकर्षित करती थी. अब भी याद हैं उनके भारी मज़बूत किसानी हाथ और बात करते समय दूसरे के हाथों को थपथपाना.

किसी रचना के बौद्धिक होने के बारे में—ख़ास तौर से इस टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए कि 'बौद्धिक कवि, कवि नहीं होता'—आप किस तरह से सोचते हैं? आम तौर पर किसी कविता को लिखते वक्त क्या आप एक विचार या विचारों को भी ध्यान में रखते हैं?

कविता में बौद्धिकता को मैं इतनी अलग चीज़ नहीं मानता. बौद्धिकता अगर एक कवि के व्यक्तित्व का स्वाभाविक हिस्सा है तो वह कविता के व्यक्तित्व का भी स्वाभाविक हिस्सा हो सकती है. बौद्धिकता को एक खोल की तरह कविता पर चढ़ाना दूसरी बात है. मैं विचार को प्रमुख रख कर कविता नहीं लिखता, पर कविता विचार-प्रमुख हो भी सकती है क्योंकि एक शब्द, या एक बिंब, या एक वि[illegible] या एक मन:स्थिति, शुरुआत हो औ[illegible] कविता में रूपबद्ध होने की प्रक्रिया[illegible] किसी एक विचार तक पहुंचे उसी [illegible] जैसे वह अगर एक भावना तक पहुं[illegible] है तो आप उसे कविता मानते हैं[illegible] भी हो सकता है कि वह कहीं त[illegible] पहुंचे, कविता में केवल एक आक[illegible] रास्ता बनाकर ही रह जाये—तो[illegible] इस रास्ते को भी एक तरह की कवि[illegible] ही मानूंगा. इसी लिए मैं बौद्धिकता [illegible] भावुकता में कोई कठिन विभाजन [illegible] करता—उन्हें एक दूसरे में वि[illegible] मानता हूं. जैसा टी.एस. एलिअट ने [illegible] 'फेल्ट थॉट' की बात कही है, या [illegible] ही सी बात रॉबर्ट लॉवेल ने भावना [illegible] प्रमुख रखकर कही थी कि—'भा[illegible] भी (बौद्धिकता की ही तरह) [illegible] छोटा-मोटा विषय नहीं है, बशर्ते कि [illegible] जानें कि उसे हम एक कविता की संर[illegible] में कहां और कैसे रख रहे हैं... जैसे [illegible] पत्ती होती है, उसकी रीढ़ मज़बूत हो[illegible] चाहिए लेकिन उसके किनारे नरम [illegible] चाहिए. अगर हम रीढ़ को नरम [illegible] दें और उसके किनारों को पक्का [illegible] मज़बूत तो उस पत्ती का पत्तीपन [illegible] समाप्त हो जायेगा.' इसी तरह एक कवि[illegible] में, मुझे लगता है, बौद्धिकता और [illegible] कता का आपेक्षिक महत्व ख़ास [illegible] रखता है, न कि उनमें से किसी एक[illegible]

किसी शौकीन और हाय किसी बेनियाज का लखनऊ/यही है किब्ल:/हमारा और आपका लखनऊ...

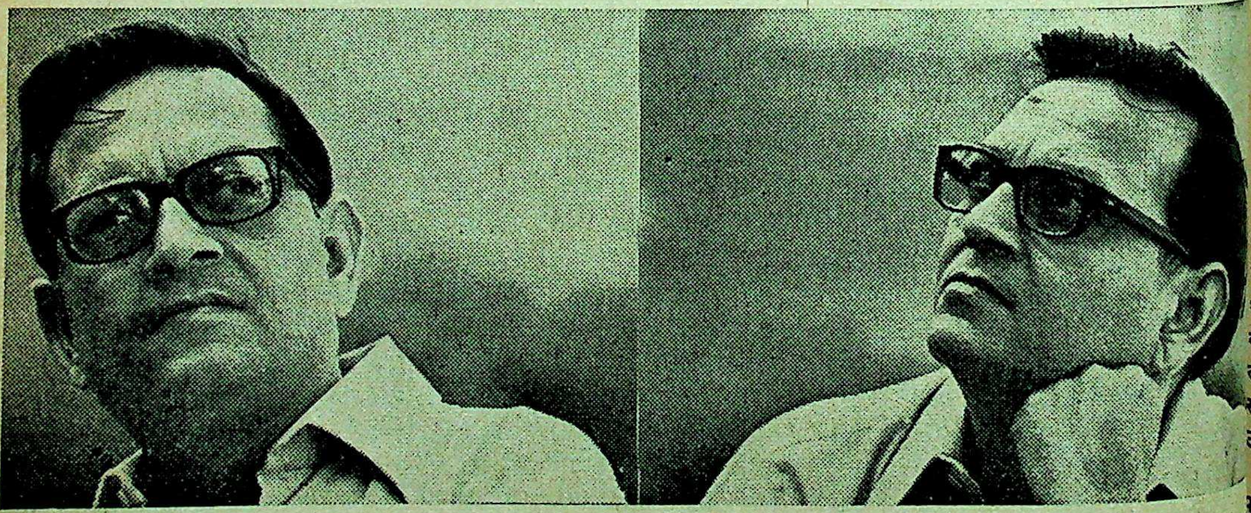

कुंवर नारायण : दो विचार मुद्राएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना. यह कि दोनों को एक कविता के पूरे व्यक्तित्व में किस तरह संगठित किया गया है . . . .

कहानी लिखने की जरूरत आप क्यों महसूस करते हैं—कवि रूप में प्रतिष्ठित होने के बाद. . .

हर साहित्यिक विधा दूसरी से भिन्न होती है. उसका जन्म ही दूसरी तरह की ज़रूरत को पूरी करने के लिए होता है. कविता से भिन्न कहानी एक खास तरह की ज़रूरत को पूरा करती है. उस तरह की ज़रूरतें मैंने महसूस की हैं, उस समय भी जब मैं कविता छोड़कर कहानी लिखता हूं या कहानी छोड़कर समीक्षा लिखता हूं. या उपन्यास लिखता हूं—तब मेरे मन में यह नहीं होता है कि ये सारी चीजें जो मैं कविता से भिन्न विधाओं द्वारा प्रकट कर सकता हूं उन्हें कविता में भी प्रकट कर सकता हूं, अगर ऐसा होता तो ज़रूरत नहीं महसूस होती. कभी-कभी मुझे ऐसा भी लगता है इस अर्थ में बहुत-सी कहानियां, हो सकता है, मेरी कविताओं का विस्तार हों. उस दिशा में जिस दिशा में स्वयं कविता को मैं विस्तृत नहीं कर पाता—ऐसी कई कहानियां मेरे कहानी संग्रह 'आकारों के आसपास' में हैं. एक विधा से दूसरी में प्रवेश के पीछे कहीं यह विचार भी रहता है कि साहित्य की एक विधा की संवेदनाओं और तकनीक का दूसरी विधाओं में भी प्रवेश हो. इससे दूसरी विधाएं समृद्ध ही होंगी—नष्ट या दूषित नहीं. एक तरह का 'क्रॉस पॉलीनेशन' कह लीजिये इसे : अन्यथा एक विधा धीरे-धीरे अपने आप में ही सिमट कर बेजान हो जा सकती है, उसका विकास रुक जा सकता है.

कहानी लिखना तो आपने कुछ बाद में शुरू किया था.

शायद मेरी पहली कहानी 'अफसर' है—1957 में लिखी थी. पासपोर्ट के सिलसिले में सरकारी दफ्तरों के चक्कर लगाने पड़े थे, लेकिन काम नहीं हो सका था. अफसरों से बातचीत हुई उसने कई स्तरों पर झकझोरा, मुझे उससे तकलीफ भी हुई और ऐसा लगा कि बहुत-सी चीजें, जैसा आदमी समझता है ऊपरी सतह पर, वैसी नहीं होती हैं.

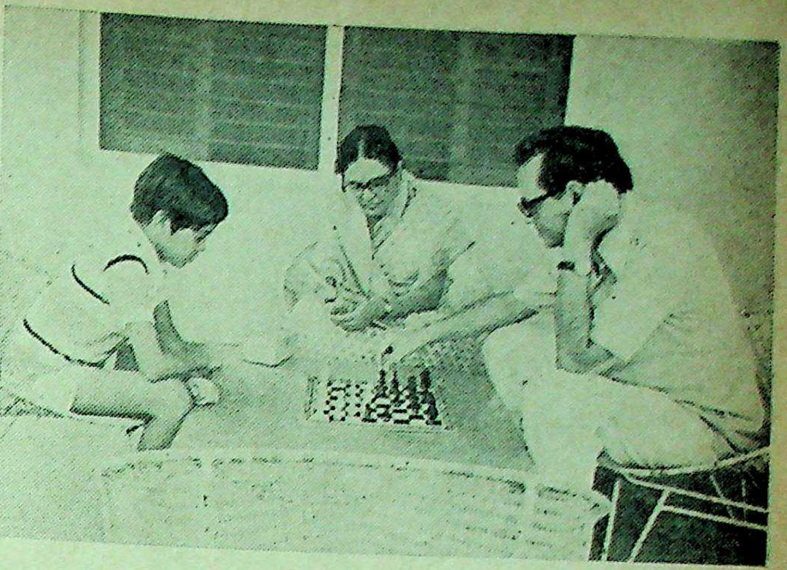

कुंवरनारायण : फुरसत के क्षणों में परिवार के साथ 'शतरंज के खिलाड़ी' का रिहर्सल

उसके नीचे कई सतहें होती हैं मानसिकता की. मसलन, एक अफसर से जब मैं दफ्तर में मिलता था तब वह एक तरह से बात करता था, बाहर दूसरी तरह से, शायद वह आदमी जब अपने घरवालों से मिलता होगा तब एक तीसरी तरह उसका मस्तिष्क काम करता होगा—और इस तरह के कई स्तर मेरे व्यक्तित्व में भी होंगे. मुझे इसने बहुत आकर्षित किया कि आदमी कितने स्तरों पर जीता है, लेकिन जब हम ईमानदारी जैसे गुणों को ढूंढने निकलते हैं और यह मान लेते हैं कि वह अगर एक जगह है तो हर जगह उसी तरह होगी तो यह मुझे कहीं पूरी मानव-स्थिति को झुठलाना-सा दीखता था. क्योंकि हो सकता है जब हम दूसरे या तीसरे स्तर पर बातचीत करते हों, मिलते हों तो वह भी एक ईमानदार स्थिति हो लेकिन उस परिस्थिति में ही कहीं कोई कठिनाई हो या खोट हो. यह जो विभिन्न स्थितियों में सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की प्रक्रियाएं हैं उन्होंने मुझे उस कहानी—और उसके बाद भी—कई बार परेशान किया. हम सब एक नहीं अस्तित्व के अनेक स्तरों पर जीते हैं और उनमें से किसी का भी एक अपना अलग, लेकिन पूर्णतः प्रामाणिक यथार्थ होता है. हर सामाजिक मूल्य इसीलिए, अस्तित्व के हर स्तर पर एक ही तरह मूल्यवान नहीं ठहरता.

इसका मतलब है कि रोज़मर्रा की ज़िंदगी में जिन लोगों से आपकी मुलाकात होती है वे आपकी कहानियों के पात्रों के आधार के रूप में सीधे-सीधे काम करते हैं ?

हां, ज़रूर करते हैं. जिस स्तर पर उनसे मिलता हूं और जिन स्तरों पर उनको समझता हूं—उनकी मानसिकता को समझता हूं—या उनके दूसरे पारिवारिक, सामाजिक संबंधों को समझता हूं उसके कई विभिन्न बिंदु रहते हैं. किसी भी एक बिंदु को पकड़ कर एक पूरी कहानी की रचना हो सकती है. इस तरह के डाइमेंशन्स (विस्तारों) को कहानी में एक्सप्लोर (खोज) करना अच्छा लगता है—शायद इसी के आधार पर कहानी में एक नयी बात पैदा करने की कोशिश करता हूं. हर कहानी का यथार्थ से कोई-न-कोई रिश्ता अवश्य होता है, लेकिन ज़रूरी नहीं कि यह रिश्ता साफ-साफ दिखाई दे और मेरी एक कोशिश यह भी रहती है कि उन कारणों, परिस्थितियों, अंतर्संबंधों आदि की वास्तविकता को भी उभार सकूं जो बाहर से दिखाई नहीं देते . . . .

आपके अनेक समकालीन बुनियादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में कवि होते हुए भी कहानियां लिखते रहे हैं. भारती, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा आदि. आपको लगता है कि आप सब की कहानियां उन कहानीकारों से अलग किस्म का स्वाद देंगी ही जो प्रमुख रूप से कहानीकार हैं?

काव्यात्मक स्वभाव कहानी या साहित्य की किसी भी अन्य विधा के लिए एक तरह की अतिरिक्त पूंजी या सरमाया हो सकता है. लेकिन कविता के आग्रह के अपने खतरे भी हो सकते हैं और ऐसी कहानियां भी हमारे सामने हैं जिनमें हमें लगता है कि कविता कहानी को बहा ले गयी है. यहां कविता के बारे में भी हमारी समझ बहुत कुछ माने रखती है— खास कर, जब हम उस समझ का इस्तेमाल कहानी के क्षेत्र में करते हैं. अगर कविता के मतलब हमारे लिए सिर्फ भावुकता की उड़ान नहीं हैं—उसमें अनुभव और चिंतन मनन की गरिमा का ठहराव भी है, तो वह एक खास तरह कहानी में भी अतिरिक्त कुछ जोड़ सकती है. ऐसा नहीं तो वह कहानी के अपने यथार्थ और क्राफ्ट को भी गड़बड़ा दे सकती है. तो जहां कहानी भारती, सर्वेश्वर, रघुवीर या श्रीकांत जैसे कवियों के हाथ में रही है वहां मुझे लगता है कि कहानी की अपनी विधा में नया और मूल्यवान कुछ ज़रूर जुड़ा है. साथ ही यह भी कहना चाहूंगा कि मेरी पसंद के ऐसे अनेक कहानीकार हैं जो कविता नहीं लिखते, लेकिन उनकी कहानियों का बुनियादी स्वभाव काव्यात्मक है और ऐसे भी हैं जिन्हें मैं बिलकुल भिन्न कारणों से अच्छा कहानीकार मानता हूं. खास बात है कि जीवन के किस पक्ष को लेकर एक कलाकार किस तरह संवेदनशील है और किस तरह की भाषाई संरचना में उसे व्यक्त करता है. कहानीकार और कवि-कहानीकार के बीच कोई अनिवार्य विरोध या टकराहट नहीं देखता

अच्छा, आप एक अच्छे कहानीकार के लिए 'शारीरिक स्तर' पर सक्रिय होने को कितना महत्त्व देते हैं? यानी कि अनुभव के बहुत व्यापक होने...

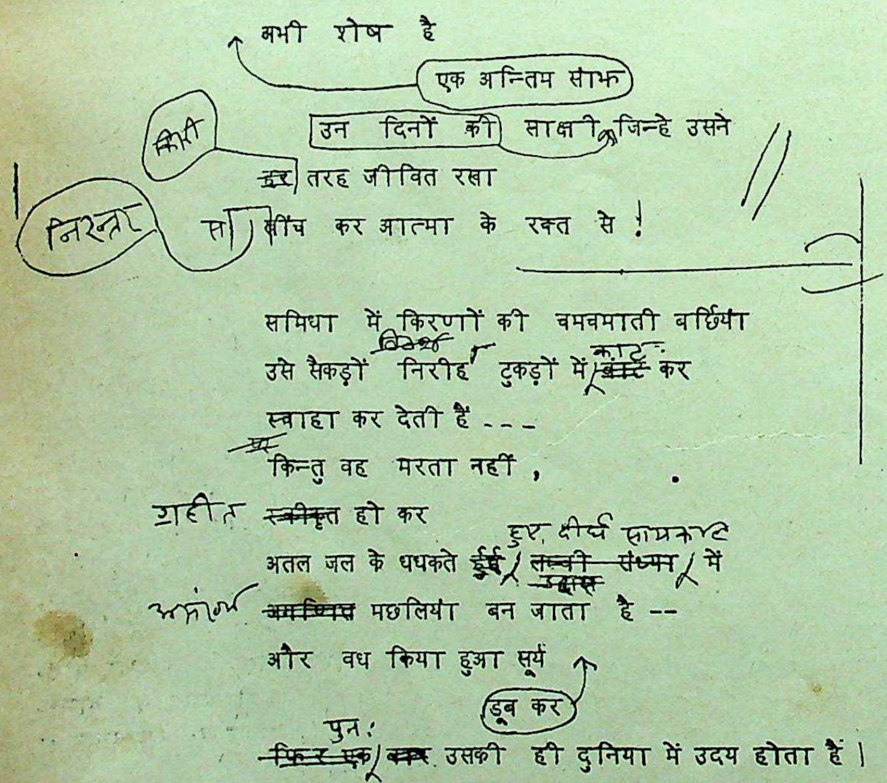
अभी शेष है
एक अन्तिम साँझ
उन दिनों की साक्षी जिन्हे उसने
तरह जीवित रखा
निरन्तर सींच कर आत्मा के रक्त से !

समिधा में किरणों की चमचमाती बर्छियां
उसे सैकड़ों विवश निरीह टुकड़ों में काट कर
स्वाहा कर देती हैं ---
किन्तु वह मरता नहीं,
गृहीत ~~स्वीकृत~~ हो कर
अतल जल के धधकते हुए, दीर्घ ... उच्छ्वास में
अगोचर ~~अमस्थित~~ मछलियां बन जाता है --
और वध किया हुआ सूर्य
डूब कर
पुनः ~~फिर एक~~ उसकी ही दुनिया में उदय होता है।

कुंवर नारायण द्वारा 'आत्मजयी' की टंकित प्रति पर किये गये संशोधन.

एक कहानीकार के लिए अनुभव ... ज्यादा अनुभव पर सोच सकने की योग्यता को ज़रूरी मानता हूं—वह संवेदनशीलता जो अपने ही नहीं दूसरों के अनुभवों को भी महसूस कर सके, उन पर ... विचार कर सके. शारीरिक स्तर ... जीवन जी सकने की एक सीमा है, ... मानसिक स्तर पर ऐसी कोई सीमा ... है. इस मानसिकता के विस्तार ... परिष्कार को इसलिए भी महत्व ... हूं कि बिना इसके हमारे अनुभव ... व्यापकता और गहराई नहीं आ सक... सहानुभूति (सिंपैथी) या समा... नुभूति (एंपैथी) द्वारा एक कहानीकार दूसरों के अनुभवों को तब बेहतर आ... सात कर पाता है जब उसके पास ... भव, जानकारी चिंतन का एक पूरा ... हो—इनमें से कोई एक या दो ही ...

आपके लिए कला बड़ी है ... ज़िंदगी? ज़िंदगी के बारे ... जानकारी पाने की बात को ... कैसे देखते हैं?

जैसा कि मैंने अभी कहा कि अगर ... आग्रह हो कि हम साहित्य में उतनी ... जानकारी को प्रामाणिक मानें, यथार्थ ... जिसे हमने स्वयं जी कर देखा हो तो ... साहित्य द्वारा ज़िंदगी के बारे में ... बहुत ही सीमित अनुभव दे सकेंगे. ... तो यह आशा करना भी गलत होगा ... हमारे 'लिखे' को दूसरे 'पढ़' कर ... के बारे में कोई अनुभव प्राप्त कर सकें ... यह तो एक तरह से पढ़ने लिखने के ... को ही अस्वीकार करना होगा. ... कम यथार्थ, या कम 'एडवेंचर' ... मानता कि जीवन के बारे में जानकारी को हम अनुभव और अध्ययन दोनों ... से ग्रहण करते हैं—और दोनों ही प्रामा... णिक हो सकते हैं. दोनों ही का सा... में इस्तेमाल हो सकता है. एक ... ऊपरी किस्म की सतही जानकारी ... इतिवृत्तात्मक ढंग से भी इस्तेमाल ... सकता है तथा जीवन और कला दोनों ... एक बिलकुल सतही स्तर पर भी जिया ... सकता है. . . अंततः यह हमारी मान... सामर्थ्य पर निर्भर करता है कि ... ज़िंदगी को कितनी बड़ी कला मानते ... या उसे कला नहीं मानते हैं, किसी ... तरह परिभाषित करते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी की पठनीयता को आप किस सीमा तक महत्व देते हैं?

इसे यों भी सोचें कि अगर पाठक को ही केंद्र में रख कर सारी कहानियां लिखी जायें तो भी पठनीय का सबके लिए एक ही अर्थ नहीं होगा क्योंकि सब पाठक एक ही तरह के नहीं होते. रुचियों में भेद मानते हुए ही हमें पठनीय अ-पठनीय के बीच भी भेद करना होगा. पठनीयता एक ज़रूरत है इसलिए एक गुण भी है, लेकिन अच्छे लेखन के लिए गुणी पाठक भी एक ज़रूरत है. पठनीयता को महत्व देता हूं लेकिन पाठक को ज्यादा महत्व देता हूं . . . . उसकी रुचि के स्तर को.

अच्छा, क्या आप अपनी किसी रचना के साथ किसी तरह का समझौता करना पसंद करेंगे जिससे कि उसे अधिक पाठक पढ़ सकें.

मैं इस बात को तर्क के रूप में कह रहा हूं, फार्मूले के रूप में नहीं.

एक सीमा तक ही, लेकिन रचनात्मकता की कीमत पर नहीं. मैं समझता हूं किसी हद तक एक रचना की प्रकृति में ही यह तर्क निहित होता है कि उसकी आंतरिक या रचनात्मक ज़रूरतों के हिसाब से बहुत ज़्यादा नहीं तोड़-मरोड़ा जा सकता. एसा करने से फिर एक कला, एक सीमा के बाद, उन शर्तों के बाहर निकल जाती है जो उस कला को एक कलाकार विशेष की कला बनाती हैं. मैं ऐसा समझौता न करके यह खतरा उठाना ज़्यादा पसंद करूंगा कि मैं सही-सही अपनी संवेदना में जैसा महसूस कर रहा हूं उसको वैसा ही रख दूं—और इंतज़ार करूं उस पाठक का जो इसे पसंद करे. बहुत-से लेखकों ने यह ख़तरा उठाया है कि जिस तरह की कला उन्हें ठीक लगी उसी पर काम किया, इसकी बहुत चिंता नहीं की कि वह बड़े-से-बड़े पाठक-वर्ग तक पहुंचे ही, क्योंकि वहां समझौता करने के दूसरे ज़्यादा गंभीर ख़तरे हो सकते हैं—लेखक पाठक दोनों के लिए.

फिल्म और थियेटर में शायद इस प्रकार का समझौता नैतिक संकट की स्थिति बहुत अधिक नहीं बनाता. मिसाल के लिए एक फिल्मकार का यह तर्क कि वह रचना के स्तर पर अगर थोड़ा समझौता करता है तो उसे अधिक दर्शक मिलते हैं जो कि व्यावसायिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है.

कुछ कलाओं का स्वरूप ही ऐसा होता है जहां दर्शक अपेक्षाकृत ज़्यादा महत्व रखते हैं. उनके साथ एक तात्कालिक संबंध बनाना बहुत ज़रूरी होता है वरना वह कला फिर अपनी संपूर्णता में दर्शक तक किसी तरह नहीं पहुंच पाती. किताब के पन्नों की तरह हम एक फिल्म या नाटक के प्रदर्शन को पीछे लौटा कर नहीं देख सकते. लेकिन कला के विभिन्न स्तर तो फिल्म या नाटक में भी होते ही हैं. . . फर्क जो हम साधारण फिल्मों और एक सत्यजित राय, त्रुफो, शाब्रोल. . की फिल्मों में पाते हैं.

त्रुफो, शाब्रोल, सत्यजित राय वगैरह तो अपने माध्यम में कथानक को काफी महत्वपूर्ण स्थान देते हैं. लेकिन फिल्म जैसे महंगे माध्यम में निजी अभिव्यक्ति के अत्यधिक निजी संसार की आप व्याख्या कैसे करेंगे?

. . . केवल कथानक की बात नहीं सोच रहा था. उन समझौतों की बात सोच रहा था जो इन कलाकारों ने अपनी कला की ज़रूरतों और दर्शक की ज़रूरतों के बीच नहीं किये, कथानक के भी स्तर पर नहीं. फिल्म के कलापक्ष, या प्रयोगपक्ष को दूसरे नंबर की ज़रूरत मानते हुए भी ऐसी फिल्में बन सकती हैं और बनी हैं, जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कही जायेंगी और आर्थिक दृष्टि से भी सफल. यह फिल्म ही नहीं अनेक कलाओं के लिए सच ठहरता है. लेकिन इस दृष्टिकोण के अपने ख़तरे हैं—कला के लिए. वह दूसरे नंबर की ज़रूरत भी नहीं बचती जल्दी ही क्लीशों या फारमूलों में बदल जाती है क्यों कि दर्शक उन्हें पसंद करता है और व्यावसायिक ज़रूरतें दर्शक की पसंद को सबसे ऊपर रखने के लिए मजबूर हैं. आज ऐसी अनेक सफल कला-फिल्में हैं जिनके लिए पर्याप्त दर्शक नहीं मिलते. यही सोच कर मैंने 'न्यू वेव' के फिल्म निर्माताओं का नाम लिया कि उन्होंने जब कला को पहले नंबर की ज़रूरत माना तो सब से पहले फिल्म को व्यावसायिक तंत्र से किसी हद तक मुक्त करके कम खर्च में फिल्में बनाने की बात सोची. कला और दर्शक, या कला और व्यवसाय के बीच आदर्श समझौता दे सकने वाले कलाकार की संभावना को 'रूल आउट' नहीं करता, लेकिन मैंने अपने में कला की रचनात्मक ज़रूरतों के दबाव को ज़्यादा महसूस किया है. जानबूझकर पाठक की उपेक्षा नहीं की, लेकिन उपेक्षा-सी अगर हो गयी लगती है कहीं, तो तभी जब मैं रचनात्मकता से जूझने

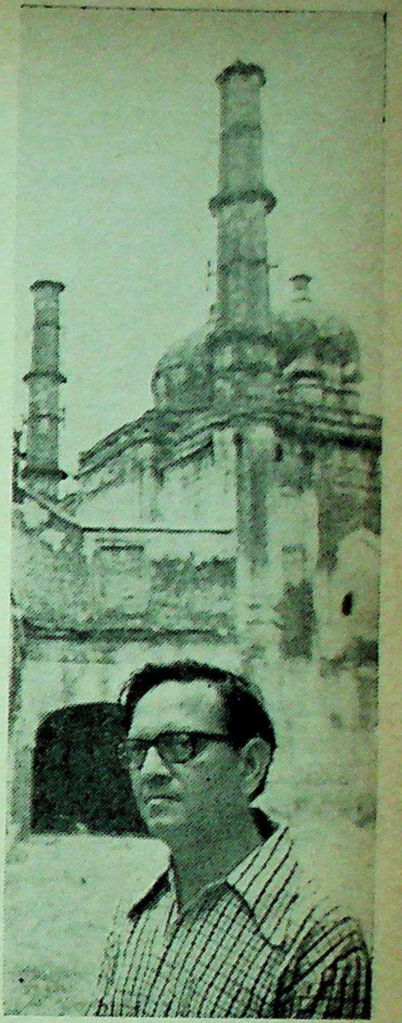

**'खंडहरों में सिसकते
किसी बेगम के शबाब-सा लखनऊ. . .
किसी मरीज की तरह
नयी जिंदगी के लिए तरसता
सरशार और मजाज़ का लखनऊ.'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मज़बूरी की उपेक्षा नहीं कर सका.

एक उपन्यास पढ़ते वक्त आपके दिमाग में क्या बातें रहती हैं? आप एक उपन्यास से क्या उम्मीद करते हैं.

कि वह आदमी—ज़िंदगी—भाषा को लेकर किस स्तर का अनुभव है. कि वह केवल मनोरंजन के लिए लिखा गया है या इससे बड़े किसी उद्देश्य से लिखा गया है. कि इस से ज्यादा बड़े उद्देश्य की तलाश के लिए वह पाठक के मन में कितनी बड़ी उत्सुकता पैदा कर पाता है. इस माने में उपन्यास मेरे लिए अगर एक खास तरह की चुनौती भी नहीं है तो मैं उसके साथ पूरी तरह 'इन्वॉल्व' नहीं हो पाता—लगता है एक अधूरी किस्म की कला के साथ 'फ्लर्ट' कर रहा हूं. मेरे लिए उपन्यास अस्तित्व के अर्ध-प्रकाशित या अप्रकाशित कोनों, तहों में पैठ कर छिपे जीवनस्रोतों को उद्घाटित करने की भी कला है—प्रकाशित या प्रत्यक्ष के विवरण मात्र की कला नहीं.

उपन्यास में भाषा का एक बिल्कुल नये तरह का इस्तेमाल और प्रयोजन मुझे आकर्षित करता है, जैसे प्रूस्त, जायस, काफ्का, बोर्खेस आदि में मिलता है. ये सब भाषा को अपने आप में एक नये तरह का अनुभव-वर्णन नहीं, खोज का माध्यम-बनाते हैं. भाषा का यह बहुत ही रचनात्मक इस्तेमाल मुझे लगता है. व्यावहारिक, इतिवृत्तात्मक या वृत्तात्मक ढंग की भाषा यह एहसास नहीं करा पाती. भाषा जो कुछ बयान कर रही है उन चीज़ों पर उपन्यासकार की दृष्टि ज्यादा रहती है—लेकिन भाषा तथा भाषा द्वारा कही जा रही चीज़ों, दोनों पर बराबर दृष्टि रखते हुए दोनों के बीच गहरी क्रिया-प्रतिक्रिया को उपजा सकना एक उपन्यास में मुझे महत्वपूर्ण लगता है.

उपन्यास विधा के विकास के मूल यूरोपीय संदर्भ को ध्यान में रख कर और आज विकसित यंत्र-विधि के उस पर पड़ने वाले दबाव को देखते हुए हमारे यहां उपन्यास की हालत आप को कैसी दीखती है?

यांत्रिकता के बढ़ते हुए प्रभावों ने मनुष्य के जीवन और उसकी कलाओं दोनों को बदला है. इस दबाव का सीधा और गहरा असर उपन्यास के जीवन-पक्ष और कला-पक्षों पर भी पड़ता है. उन्नीसवीं सदी तक सामाजिक उपन्यास का जो ढाँचा योरुप में विकसित हुआ उसके पीछे कहीं हम औद्योगिक क्रांति के साथ उभरती मध्यवर्गीय जीवनदृष्टि को प्रमुख पाते हैं. उसकी संरचना में एक तरह की दृढ़ता, विश्वास और व्यवस्था है. बीसवीं सदी का उपन्यास एक स्वप्नभंग की अवस्था का बोध कराता है जो उसके पूरे शरीर और आत्मा में व्याप्त दिखता है. भारतीय जीवन पर यांत्रिकता का दबाव योरुप की अपेक्षा धीमा और कम रहा और समाज के सभी वर्गों पर एक-सा नहीं होता. मैं समझता हूं कि यांत्रिकता की अपेक्षा भारतीय साहित्य पर अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव ज्यादा गहरा पड़ा और इस माने में गलत पड़ा कि उसने हमारी चेतना में एक खास तरह का विभाजन उत्पन्न किया. समझ और संवेदना के स्तर पर उसने कुछ को बहुतों से अलग किया. आज के हिंदी उपन्यास पर हम इस विभाजन का सीधा असर पाते हैं. एक ओर तो ऐसे सामाजिक, आंचलिक उपन्यास हैं जिनमें हमें 19वीं सदी की योरोपीय जीवनदृष्टि और उपन्यास-कला की झलक मिलती है; ... ओर 20वीं सदी की उपन्यास... की अनेक बारीकियों की ... अधिक सचेत आदमी के स्वभाव ... ज़िंदगी के गुणात्मक अध्ययन ... ज्यादा महत्व देने वाले उपन्यास ... अगर ज्यादा हिंदी उपन्यास नहीं मी... कुछ उपन्यासकार ज़रूर आश्वस्त करते ...

पर आप इस बात पर गौर ... कि हिंदी की श्रेष्ठ कहानियों ... चुनाव तो आसानी से हो सक... हैं, उपन्यासों का नहीं. क्या ... हमारी मानसिकता की ही ... सीमा पर बनावट पता चलती ...

उपन्यास मुख्य रूप से योरुप में विकसि... हुआ. उसका विकास योरुप की छापे... जैसी यांत्रिक, औद्योगिक और ... वसायिक प्रगति के साथ घनिष्ठ ... से जुड़ा है. उपन्यास योरुप से बाहर ... देशों में गया; जबकि कहानी ... के बाहर भी और शायद योरुप ... बेहतर भी, अनेक देशों में भी जन्मी ... पनपी—तथा उसके बीज और प्रौढ़ ... रूप दोनों हम प्राचीन भारत, ... अरब आदि देशों के साहित्यों में पाते ... तो भारत में कहानी की एक निति... परंपरा है. उसकी यादें हमारे सामू... अंतर्मन में व्याप्त हैं और कहानी ...

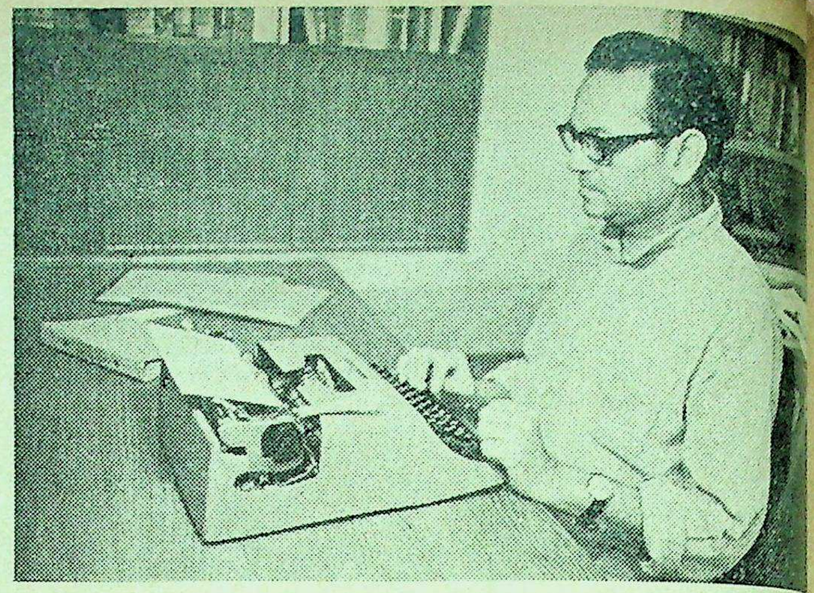

टाइपराइटर के साथ रचनात्मक क्षण : दरअसल टाइपराइटर ही उनकी कलम ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

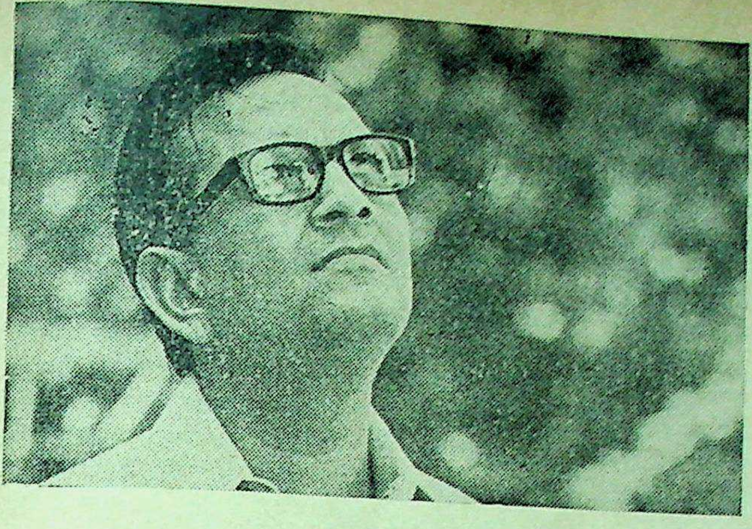

बाज़ार : जहां ज़रूरतों का दम घुटता है
बाज़ार : जहां भीड़ का एक युग चलता है
सड़कें : जिन पर जगह नहीं
कुंवर नारायण : एक रचना मुद्रा

की स्वाभाविक कला के रूप में आज भी आसानी से प्रकट होती रहती हैं. उपन्यास किसी हद तक हमारे लिए एक विदेशी कला है—एक तरह से अभ्यास द्वारा प्राप्त की हुई कला. यद्यपि उसे हम एक सीमित अर्थ में कहानी का विस्तार भी मान सकते हैं—लेकिन, फिर वह परिभाषा भी कहानी की परिभाषा का ही विस्तार होगा, उपन्यास की अपनी परिभाषा नहीं. दूसरी बात है, पाश्चात्य देशों में परिवर्तनों की रफ्तार जितनी तेज़ है उतनी भारत में नहीं. वहां का आदमी एक जीवन-काल में जितने परिवर्तनों को देख डालता है, जितनी विभिन्न परिस्थितियों को झेल डालता है, उतना हिंदुस्तान का आदमी नहीं. अनुभव की इस विविधता के लिए उपन्यास का बड़ा कैनवस ज्यादा उपयुक्त ठहरता है. जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को तीव्रता से उभारने के लिए कहानी विधा बेहतर है—और शायद इसीलिए वह भारतीय जीवन के ज्यादा नज़दीक पड़ती है.

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि अत्यधिक लोकप्रियता रचना पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है बल्कि पाठकों पर भी बोझ बन जाती हैं? एक बार कॉलिन विल्सन ने अपने लेख में सांस्कृतिक तानाशाही फ्रेज़ का इस्तेमाल करते हुए डिकेंस, बर्नार्ड शॉ, एलियट आदि के उदाहरण दिये थे. . .

लोकप्रियता एक हद के बाद बोझ भी बन जा सकती है. साहित्यकार के लिए भी और उसके साहित्य के लिए भी. एक साहित्यकार जिस तरह के साहित्य को लेकर लोकप्रिय होता है उसके दबाव से आसानी से मुक्त नहीं हो पाता और अपने आपको दोहराने लग सकता है. साहित्य में नयी शक्ति लाने की एक शर्त यह भी हो सकती है कि पुराना बहुत कुछ रद्द या अस्वीकार करना पड़े. दूसरा खतरा जिसे विल्सन ने सांस्कृतिक तानाशाही कहा है कि एक खास तरह की कला-रुचि को पहले बनाने और फिर बनाये रखने की कोशिशों के साथ जुड़ा है. (प्रकाशन का व्यावसायिक पक्ष भी इससे अलग नहीं और इसे मैं ज़रूरी समझता हूं कि लोकप्रियता व्यावसायिकता के रूप में सक्रिय न हो, साहित्य के बारे में सही समझ के साथ जुड़े) रुचियों का यह आरोपण साहित्य के विकास को भी रोकता है और पाठक की रुचियों के विकास को भी. बहुत बड़ा लेखक बहुत बड़ा प्रभाव होता है अपने समय के लेखकों पर और कभी-कभी उस समय की दूसरी साहित्यक प्रतिमाएं अपनी तरह नहीं पनपने पातीं. तब साहित्य का एक रूप तो स्थिर होता है लेकिन उसका स्वतंत्र विकास अवरुद्ध भी : वह तभी रुक सकता है जब नये साहित्यकारों में इतनी समझ और 'वाइटैलिटी' हो कि वे लेखन की वास्तविकता की ओर जायें, लोकप्रियता के जादू की ओर नहीं.

आप अपने लिखे हुए को अपने पास अक्सर बहुत देर तक क्यों रखे रहते हैं? मुझे यह बात आश्चर्यजनक लगती है कि इतिहास सीरीज़ की अपनी कविताओं को आपने इतने लंबे समय से रोका हुआ है जब कि उनमें से अनेक कविताएं आपकी 'भाषा' में महत्वपूर्ण परिवर्तन के संकेत देती हैं.

कविता लिखते समय की आत्मीयता और फिर उसे तटस्थ होकर देख सकने की स्थितियों के बीच काफी अंतराल देता रहा हूं—इसे ज़रूरी भी मानता हूं. लेकिन कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि कुछ कविताओं को जल्दी ही छपाता तो बेहतर होता. एक समय में एक खास तरह का चिंतन साहित्यिक वातावरण में व्याप्त होता है जो अपनी तरह कविताओं में भी प्रतिध्वनित होता है और अगर एक कविता सही वक्त में छप जाती है तो वह पाठक के लिए ज़्यादा माने रखती है. मैंने अपने आप को खुला रखने की कोशिश की है, साथ ही इस ओर भी सतर्क रहा हूं कि राजनीति या पत्रकारिता के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण जो एक खास तरह की भाषा बन रही थी वह कविता पर ज़रूरत से ज़्यादा न छा जाये. निराला का आदर्श मेरे सामने रहा कि मैं भाषा की किसी एक शैली में न बंध जाऊं: कविता की ज़रूरतों के हिसाब से ही उसको उसकी भाषा दे सकूं. इतिहास-संबंधी कविताओं में मैंने इतिहास की घटनाओं और व्यक्तित्वों को केंद्र में न रख कर इतिहास के उन अनुभवों को केंद्र में रखा है जो आज भी प्रासंगिक हैं—इसे मैं एक तरह की विस्तारित प्रासंगिकता (एक्सपैंडेड कंटेक्सचुएलिटी) कहना चाहूंगा. मानो 'हो रहे' और 'हो चुके' के बीच हम उन शाब्दिक चिन्हों को खोज रहे हों जिनके द्वारा हम आदमी के सही व्यक्तित्व तक पहुंचेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह और मैं

: कृष्ण बलदेव वैद

एक

उसका दावा है कि वह मुझे उस दौर में भी बख़ूबी जानता-पहचानता था जब मैं उसकी हस्ती से मुनकिर अगर नहीं तो बेख़बर ज़रूर था. मैं यही कहता हूं कि मैं उसे तब से जानता हूं जब से मैं बाहोश हुआ हूं. उसका दावा है कि वह शुरू से ही बाहोश है. मैं इस बड़ में उसकी बराबरी नहीं करना चाहता.

▣

कई बार कराह उठता हूं, काश उसे न जानता होता! कई बार महसूस होता है कि उसे जानता हूं इसीलिए दूसरों से इतना दूर रहता हूं, क्योंकि जब से बाहोश हुआ हूं तब से इस वहम का शिकार हूं कि अगर उसे अंदर तक जान लूंगा तो शायद किसी और को करीब से जानने की ज़रूरत रहेगी, न ख़्वाहिश, न मजबूरी, तो शायद यह जतलाने की मजबूरी भी न रहे कि मैं उसे जानता हूं, तो यक़ीनन यह कराहने की ज़रूरत भी नहीं रहेगी. काश उसे न जानता होता, तो शायद अपने आपको जानने का जुनून भी जाता रहे. ज़ाहिर है यह जुनून अभी गया नहीं, वर्ना आज फिर इस तरह उसे न ले बैठा होता. वैसे वह यहां ज़िद किये जा रहा है कि आज फिर वह मुझे ले उड़ा है.

▣

आजकल अक्सर कोरे काग़ज़ पर झुका-झुका एकदम रुक जाता हूं और उसके बारे में सोचना शुरू कर देता हूं. सिर नहीं उठाता. डरता हूं कि वह नज़र नहीं आयेगा, कि वह नज़र आ जायेगा. जब से उसका सहबोध स्वीकार किया है, उसे साफ़-साफ़ देखा एक बार भी नहीं. उसके सहबोध से पहले उसे साफ़-साफ़ देखने की ख़ास ख़्वाहिश ही नहीं उठी. अब उठते ही इस ख़ौफ़ में बदल जाती है कि सिर उठा कर देखूंगा तो वह नज़र आ जायेगा और मैं फ़ना हो जाऊंगा, कि सिर उठा कर देखने पर भी वह नज़र नहीं आयेगा और मैं किसी और उठान के क़ाबिल नहीं रहूंगा. उसे मेरी इस उलझन का इल्म है. उसका दावा है कि उसे मेरी हर उलझन का इल्म हर वक़्त रहता है. मैं इस बड़ में उसकी बराबरी नहीं कर सकता.

▣

सिर नहीं उठाता लेकिन यह पूछ लेता हूं, "क्यों, वही लिख रहा हूं न जो तुम बोल रहे हो?" वह हमेशा एक ही जवाब देता है, "मैं वही बोल रहा हूं जो तुम लिखना चाहते हो."

आजकल वह इसी ज़िद पर अड़ा हुआ है. किसी ज़माने में वह कहा करता था कि मैं जो लिखता हूं उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ लिखता हूं, इसीलिए वह खोखला होता है. मैं अक्सर उस से कहा करता था—तो साफ़-साफ़ बताते क्यों नहीं कि क्या लिखूं? वह हमेशा एक ही जवाब दिया करता था—मैं तो बार-बार बताता हूं, तुम सुनो तो!

▣

आजकल उसने यही ज़िद पकड़ रखी है. कहता है, "तुम मेरी मर्ज़ी की परवाह मत करो, कि मैं हमेशा वही बोलूंगा जो तुम लिखना चाहते हो. मैं कहता हूं कि मैं नहीं जानता कि मैं क्या लिखना चाहता हूं, कि मैं एक अर्से से वही ऊल-जुलूल लिखता चला आ रहा हूं जो वह मुझ से लिखवाता चला आ रहा है. वह इस बात पर यों मुस्कराता हुआ महसूस होता है जैसे कोई बाप अपने बिगड़े हुए बच्चे...

हैरान हूं कि वह मान क्यों नहीं... कि मैं वही लिखता हूं जो वह बोल... चाहता हूं कि यह सच हो या न हो... इसे मान ले, ताकि इन काले-गोरे... की सारी ज़िम्मेदारी उसी के सिर... कहता हूं कि उसे कोई एतराज़ नहीं... चाहिये, कि उसे कोई नुक़सान नहीं... क्योंकि उसे मेरे सिवा न कोई जान... न मानता है. वह कहता है कि कोई... जाने न जाने, वह मेरे काम का इल्म... इनाम कभी नहीं लेगा.

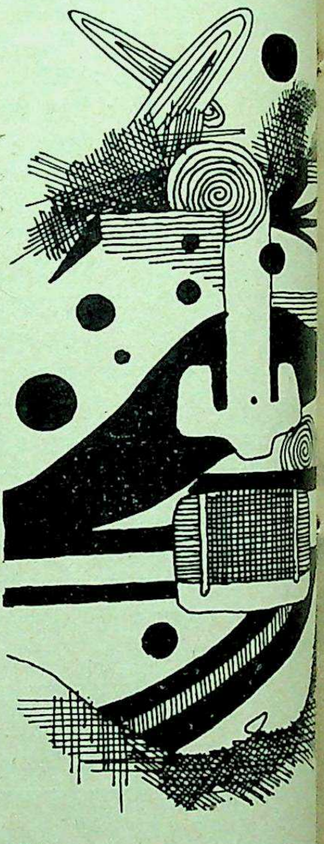

▣

किसी तीसरे को उसके, या... चली आ रही इस तक़रार के... नहीं बताता. डरता हूं कि वह... समझेगा कि मेरा सिर फिर गया है... किसी मरे-पिटे प्रतीक से ही खेल... इसलिए भी बार-बार उसी से... करता रहता हूं कि वह मेरी ज़िद... इसीलिए वह अपनी ज़िद छोड़... तैयार नहीं होता. कई-कई दिन... खिंचाव में ख़राब हो जाते हैं, हा...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूल जाता हूं कि मेरी रुकावट का कारण क्या था. आंखों के नीचे बिछा कोरा कागज़ किसी काले आईने-सा दिखायी देता है. मैं कुछ भी लिख डालने के लिए उतावला हो ही रहा होता हूं कि सुनता हूं उसने फिर बोलना शुरू कर दिया है. जी चाहता है कि उसकी इबारत को कागज़ पर उतारने से इनकार कर दूं. वह फ़ौरन भांप जाता है और खामोश हो जाता है. जी चाहता है कि उसकी इस खामोशी का फ़ायदा उठा लूं और अपनी मर्ज़ी के मुताबिक कुछ लिख लें जाऊं. लेकिन ज्योंही झुकता हूं, सुनायी देता है कि उसने फिर सुरसुराना शुरू कर दिया है.

▣

बस आजकल अक्सर यही होता है. अचानक रुक जाता हूं और कई-कई दिनों तक रुका रहता हूं. जो लिखता हूं, उसे न वह अपनाता है न मैं, इसीलिए उसमें रवानी नहीं होती, इसीलिए वह न उसे पसंद आता है न मुझे. सोचता हूं कि अगर किसी रोज़ सिर उठा कर उसके रू-ब-रू खड़ा हो जाऊं, और इस तकरार को आख़िरी कड़वे नुक्ते तक ले जाऊं, तो शायद हम दोनों में कोई ऐसा समझौता हो जाये, जिसकी बदौलत मेरी तहरीर में फिर वैसी ही हरकत और हरारत आ जाये जो उसकी दख़ल-अंदाज़ियों से पहले शायद हुआ करती थी.

▣

लेकिन उसके रू-ब-रू होने के ख़याल से ही मेरे रहे-सहे रौंगटे खड़े हो जाते हैं. मेरी इस हालत से उसकी ज़िद और मज़बूत हो जाती है, और हमारी तकरार और तल्ख़. सवाल किया जा सकता है कि ऐसे उल्टे साथी का सहयोग मैंने स्वीकार ही क्यों किया? मैं उस शैतान को साथी का दर्जा देकर अपना निरादर नहीं करूंगा, न ही यह मान कर दूंगा कि मैंने अपनी रज़ा से उसका सहबोध स्वीकार किया था, न ही यह कि वह वही बोलता है जो मैं लिखना चाहता हूं, न ही यह कि वह जानता है कि मैं क्या लिखना चाहता हूं, न ही यह कि मैं जानता हूं कि मैं क्या लिखना चाहता हूं, न ही यह कि मैं लिखना चाहता हूं.

मेरे इस सरासर इनकार का भी उस पर कभी कोई असर नहीं होगा. मैं जानता हूं. वह भी जानता है. इसीलिए शायद मुझे महसूस हो रहा है कि इस वक्त मेरे सिर पर सवार सियाही में उसकी मुस्कराहट किसी सफ़ेद फूल की तरह खिली हुई है. लेकिन मैं सिर नहीं उठाऊंगा. डरता हूं कि वह नज़र आ जायेगा, कि वह नज़र नहीं आयेगा.

दो

मैं समझता हूं कि मैं उसका निगहबान हूं, वह समझता है कि वह मेरा. मैं उसे

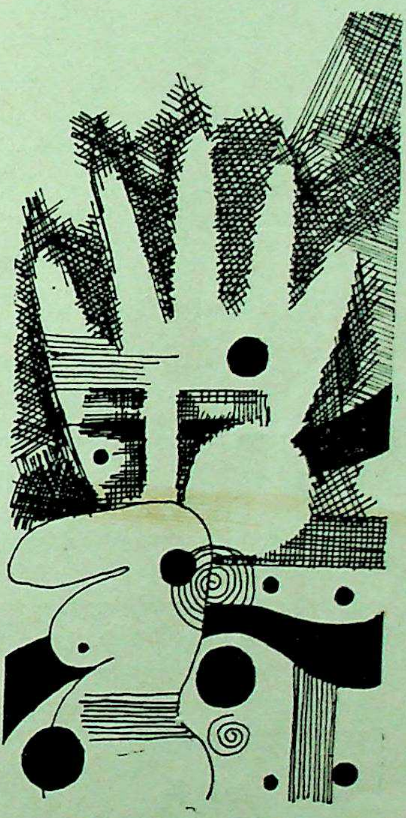

समझाता हूं कि अगर मैं ख़बरदार न रहूं तो वह बिखर जायेगा, वह मुझे समझाता है कि उसी की ख़बरदारी की बदौलत मैं अभी तक पूरी तरह बिखरा नहीं. मैं कहता हूं कि अगर मैं बिखर गया तो उसका वजूद भी नहीं रहेगा, वह जवाब देता है कि वह तो अब भी बेवजूद है. मैं उसके जवाब को झटक कर कहता हूं कि उसका वजूद बनाये रखने की ख़ातिर ही मैं इस दोज़ख़ को झेल रहा हूं, वह एहसान चढ़ाता है कि मेरा वजूद कायम रखने के लिए ही वह अपने बहिश्त से बाहर आता है.

▣

मैं समझता हूं कि यह दोज़ख़ हम दोनों के लिए ज़रूरी है, वह ज़िद करता है कि उसके लिए ज़रूरी कुछ भी नहीं. कभी-कभी इस तकरार से तंग आकर सोचता हूं कि वह महज़ मेरा वहम है, वह मुझे और तंग करने के लिए कहता है कि वह वहम तो है लेकिन मेरा नहीं. मैं चाहता हूं कि या तो हम दोनों एक हो जायें, या वह मुझे मेरे हुजरे में छोड़ कर ख़ुद कहीं और जा छिपे; वह चिल्लाता है कि मैं नहीं जानता कि मैं क्या चाहता हूं. मैं समझता हूं कि वह मेरा मज़ाक़ उड़ा रहा है, वह समझाता है कि वह मुझे मज़ाक़ के काबिल ही नहीं समझता. मैं जानता हूं कि वह जान-बूझ कर बेवक़ूफ़ बनता है, वह कहता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता. मैं सोचता हूं कि अगर उसके बारे में सोचना बंद कर दूं तो शायद उस से मुक्त हो जाऊं, वह कहता है कि मैं उसके बारे में सोच ही नहीं सकता. मैं पूछता हूं कि वह मेरी आवाज़ में क्यों बोलता है, वह जवाब देता है क्योंकि उसकी अपनी कोई आवाज़ नहीं. मैं चुप हो जाता हूं, वह चीखता रहता है, और तब उसकी कोई बात मेरी समझ में नहीं समाती.

▣

वह पूछता है, मैं हर वक्त परेशान क्यों रहता हूं? मैं पूछता हूं, वह हर वक्त प्रसन्न क्यों रहता है? वह उपदेश देता है, परेशानी बेकार है. मैं चिल्लाना चाहता हूं, बेकार क्या नहीं, लेकिन चुप रहता हूं. वह कहता है कि मेरा बोध अधूरा है. मैं पूछना चाहता हूं कि मेरा क्या अधूरा नहीं, लेकिन चुप रहता हूं. वह समझाता है, अगर मैं सच्चे दिल से स्वीकार कर लूं कि मेरा सब कुछ अधूरा है तो मेरी परेशानी दूर हो जायेगी, मैं चिल्लाना चाहता हूं कि मैं सच्चे दिल से कुछ भी स्वीकार नहीं कर सकता, लेकिन चुप रहता हूं. वह पूछता है, मैं आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना चुप क्यों रहता हूं? मैं कहना ही चाहता हूं कि अगर वह वचन दे कि वह चुप हो जायेगा तो मैं बोलना शुरू कर दूंगा, लेकिन चुप रहता हूं. आजकल वह अक्सर इतना ज़्यादा और फ़ज़ूल बोलता है और मैं इतना कम और काम का कि कभी-कभी मुझे वहम हो जाता है कि वह मुझमें बदल गया है और मैं उसमें. मेरा यह वहम विश्वास में बदल ही रहा होता है कि वह फिर यूं गुम और गूंगा हो जाता है जैसे मेरा गुरू हो, और मैं यूं घिघियाने लगता हूं जैसे कोई घायल.

मैं समझता हूं कि संसार ने मुझे जकड़ रखा है. वह समझाता है कि मैं ससार में जकड़ा हुआ हूं. मैं पूछता हूं उपाय क्या है? वह कहता है उपाय की उमंग नहीं होनी चाहिए. मैं कहता हूं, मैं मानता हूं नहीं होनी चाहिए लेकिन है, इसका क्या करूं? वह हंसता हुआ महसूस होता है. मैं चुप हो जाता, वह मुझे हूं यूं पुचकारता है जैसे कोई बाप अपने बिगड़े हुए बच्चे को. मैं तड़प कर पूछता हूं, वह कोई आसान-सा उपाय बता क्यों नहीं देता वह कड़क कर कहता है, मैं निरुपाय हूं.

▣

कभी-कभी मैं उसकी दखलअंदाज़ी से इतना दिक् हो जाता हूं कि हाथ जोड़-जोड़ कर इल्तिजा करता हूं कि वह मुझे मेरे हाल पर छोड़ कर कहीं और जा बसे. कभी-कभी वह मेरी मिनमिनाहट से इतना तंग नज़र आता है कि मुझे उम्मीद होती है, वह मुझे मार डालेगा; लेकिन फिर वह सहसा मुस्कराना शुरू कर देता है, और मैं मरना. मैं दोहराता हूं कि जब तक वह मेरे सिर से टलेगा नहीं, मैं मिनमिनाता रहूंगा. वह सहसा हंसना शुरू कर देता है. मैं चिल्लाता हूं—चुप हो जाओ. वह अचानक यों चुप हो जाता है जैसे मुझे इसी दोज़ख में छोड़ कर खुद किसी बहिश्त में जा बसा हो. मैं उसकी हंसी और वापसी के लिए अकुलाना शुरू कर देता हूं.

▣

किसी-किसी रूखे और रौशन लम्हे में मैं इतना बेलिहाज़ हो जाता हूं कि मुझे

अपना किया-जिया सब निस्सार नज़र आता है. किसी-किसी रौशन और रूखे लम्हे में वह इतना बेलिहाज़ हो जाता है कि उसे न सिर्फ़ मेरा बल्कि हर एक का किया-जिया सदा निस्सार नज़र आता है. तब हम कुछ लपलपाते हुए लम्हों के लिए एक दूसरे के इतने करीब आ जाते हैं जैसे दो देरीना और जानी दुश्मन. लेकिन तब भी हम इतने बेलिहाज़ नहीं हो पाते कि एक दूसरे का अंत कर सकें. हर बार हमारे हाथ एक दूसरे की गर्दन के ऐन ऊपर पहुंच कर पथरा जाते हैं और मुझे महसूस होता है मानो किसी तीसरे ने हमें गले मिलते पकड़ लिया हो.

तीन

कई दिनों से वह यह घिसा-फटा उपदेश दोहरा रहा है कि मैं अहम् से ऊपर उठ कर उड़ूं. मैं उसे टालता चला आ रहा हूं कि जब तक वह है, मैं अहम् से ऊपर उठ ही नहीं सकता, उड़ना तो एक तरफ़ रहा. वह पूछता है, वह कौन है. मैं पीछा छुड़ाने के लिए कह देता हूं, वही मेरा अहम् है. वह पूछता है, तो मैं उसे मार क्यों नहीं डालता. मैं कराह उठता हूं काश मैं उसे मार सकता! मेरे इस और वार के जवाब में कोई वार करने की बजाय वह मुस्कराना शुरू कर देता है, और मैं मरना. वह याद दिलाता है कि मैं उसकी मौत से पहले मर नहीं सकता. मैं जवाब देता हूं—मैं जानता हूं, मैं दरअसल मर नहीं रहा, सिर्फ़ कोशिश कर रहा हूं. वह चिढ़ाता है—कोशिश बेकार है. मैं चिल्लाता हूं—मुझे मालूम है. वह पूछता है—तो कोशिश क्यों करते हो? मैं जवाब देता हूं—काश मुझे मालूम होता. आजकल हमारी तकरार इसी तरह रुक-रुक कर चल रही है. इसीलिए सोचता हूं इसका अंत तब तक नहीं होगा जब तक उसके घिसे-फटे उपदेश पर अमल करता अहम् से ऊपर नहीं उठ जाता. इसीलिए शायद वह आश्वस्त नज़र आता है कि हमारी तकरार का अंत हमारे से पहले नहीं होगा.

▣

आजकल अक्सर अनायास बिलबिला उठता हूं—अब और सहा नहीं जाता. वह पूछता है—क्या? मैं जवाब देता हूं—यह सारा संसार. वह पूछता है—तो क्यों सहते हो? मैं पूछता हूं—तो मैं क्या करूं? वह जवाब देता है—अगर अभी तक तुम्हें यही पता नहीं चला तो तुम्हें कुछ भी नहीं बता सकता. मैं पुकार उठता हूं—अब और कहा नहीं जाता! वह फुंकार उठता है—काश कि तुम सच बोल रहे होते! मैं पूछता हूं—तो क्या होता? वह जवाब देता है—हम दोनों खामोश हो गये होते. मैं पूछता हूं—तो तुम मान रहे हो कि तुम खामोश नहीं? वह पूछता है—अगर मैं खामोश होता तो तुम बोल रहे होते? मैं खामोश हो जाता हूं, वह देर तक बिलबिलाता रहता है.

▣

वह कहता है, मैं बहुत कमज़ोर हूं. मैं मान लेता हूं, मैं बहुत कमज़ोर हूं. वह पूछता है—अपनी कमज़ोरी का कारण जानते हो? मैं खबरदार हो उठता हूं. सोचता हूं वह कोई जाल बिछा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सवाल दोहराता है. मैं और खबरदार हो जाता हूं. उसकी तरफ यों देखता हूं जैसे कोई कमज़ोर अपनी कमज़ोरी की तरफ. वह इस संकेत पर हैरान होने का अभिनय करता है, मैं उसकी हैरानी पर हंसने का. मैं अपनी स्वाभाविक भयभीत मुद्रा में लौट ही रहा होता हूं कि वह चिल्लाता है—तुम्हारी कमज़ोरी का मूल कारण मैं हो ही नहीं सकता क्योंकि तुम्हारे बग़ैर मैं हो ही नहीं सकता. मैं ठिठक जाता हूं. अक्सर उसका तर्क यह होता है कि मैं उसके बग़ैर हो ही नहीं सकता. डरते-डरते पूछता हूं—तो क्या तुमने मान लिया कि मैं ही तुम्हारा ख़ालिक हूं? वह हंसते-हंसते जवाब देता है—हां. मैं कहता हूं—अगर मैं तुम्हारा ख़ालिक हूं तो मैं इतना कमज़ोर क्यों हूं? वह जवाब देता है—क्योंकि तुम मेरे ख़ालिक हो और खाकी हो. मैं उसकी तरफ यों देखता हूं जैसे कोई कुम्हार अपनी मिट्टी की तरफ, या शायद कोई मिट्टी अपने कुम्हार की तरफ.

▣

किसी-किसी लड़खड़ाहट के दौरान इतना दीन हो जाता हूं कि उसका सहारा ले लेने के सिवा और कोई चारा नहीं रहता. ऐसे अवसरों पर वह न सिर्फ निस्संकोच मुझे थाम लेता है बल्कि तब तक थामे रहता है जब तक मैं स्थिर नहीं हो जाता. मैं अपनी ताज़ा-तरीन लड़खड़ाहट को भूल ही रहा होता हूं कि वह हमला करता है—अगर मैं न होता तो तुम क्या करते? मैं फैसला नहीं कर पाता कि वह मेरा हमदर्द और हमसफ़र है या कोई ऐसा मूज़ी जिसे मेरी हर मुसीबत से मज़ा मिलता है. वह अपना सवाल दोहराता है. मैं जवाब देने की बजाय फिर रोज़मर्रा की रेत में रत हो जाता हूं. अगली लड़खड़ाहट तलक.

कभी चाहता हूं कि उस से आज़ाद और अलग रहकर ही इस दोज़ख़ के सारे अज़ाब सहूं, सारे आनंद आजमाऊं. कभी चाहता हूं कि इस हद तक उसका हो जाऊं कि कह सकूं, किसी भी अज़ाब को सहने की मजबूरी नहीं रही, किसी भी आनंद को आजमाने की आरज़ू नहीं रही. कभी सोचता हूं कि अगर वह या उसका आभास मेरी हर स्थिति और सोच पर हावी न होता तो ये सारे अज़ाब और आनंद और ज़्यादा ग़ैरज़रूरी नज़र आते. कभी सोचता हूं कि कभी तो उसे भूल कर भी अपने भय या अपनी सोच के समंदर में छलांग लगा सकूंगा. कभी सोचता हूं कि उसे भूल पाना अब नामुमकिन है. ज़ाहिर है मैंने मान लिया है कि उसके या उसके आभास के बग़ैर मेरी कोई हस्ती नहीं. नहीं, अभी मैंने कुछ भी नहीं माना. ज़ाहिर शायद यही है कि मैं अधीर हो रहा हूं. कभी सोचता हूं कि उसके बग़ैर मेरी हस्ती या नेस्ती का कोई मतलब नहीं, कोई मक़सद नहीं. ज़ाहिर है कि मैंने फिर उसके हुज़ूर में घुटने टेक दिये हैं. वह शायद इस वक़्त किसी महान मसख़रे की तरह मुस्करा रहा है. नहीं, ज़ाहिर सिर्फ यही है कि मैं इस समय अपने क्रंदन-कक्ष में सहमा बैठा उसका जाप कर रहा हूं, या शायद उसका मातम, या शायद उसके न होने की शिकायत, या शायद उसके न होने का मातम, या शायद अपने होने की शिकायत, या शायद अपने न होने का मातम. ज़ाहिर है कि अभी कुछ भी नहीं हुआ.

चार

किसी-किसी शून्यग्रस्त शाम के ख़ामोश झुटपुटे में उसके पीछे-पीछे चलता हुआ एक गुप्त गुफ़ा के दहाने पर जा खड़ा होता हूं. इंतज़ार करता हूं कि शायद अब वह कोई आदेश या उपदेश देगा. वह मुड़कर मेरी तरफ यों देखता है जैसे ललकार भी रहा हो और दुत्कार भी. मैं मुंह उठाकर उसकी तरफ यों देखता हूं जैसे कोई पालतू जानवर अपने जाबर मालिक की तरफ. वह निर्मम नज़र आता है, मैं निहत्था. मुझे इसी कैफ़ियत की कुछ पुरानी शामें याद हो आती हैं. सोचता हूं, हो सकता है, इस शाम का अंत किसी ऐसे दृश्य पर हो जिसके बाद किसी और दृश्य की आशा और इच्छा न रहे. डरता हूं कि वह इस सोच को अपनी मुस्कराहट से डस लेगा. आंखें झुका लेता हूं. डरता हूं कि वह डरावनी आवाज़ बनाकर पूछेगा—कहां झांक रहे हो? चाहता हूं कि वह मेरा कांपता हुआ

हाथ पकड़ कर मुझे उस गुफ़ा के अंदर घसीट ले जाये. डरता हूं कि वह मुझे अंदर छोड़कर खुद बाहर भाग जायेगा. सोचता हूं, वह सब जानता है कि मैं क्या सोच रहा हूं! जानता हूं कि सिर उठाकर देखूंगा तो वह मुस्कराता हुआ नज़र आयेगा. आंखें बंद कर लेता हूं. उसका हाथ अपनी तरफ बढ़ता हुआ दिखायी देता है. बिदककर पीछे हट जाता हूं. वह गरजता है—तुम आखिर चाहते क्या हो? मेरी आंखें खुल जाती हैं लेकिन सिर झुका रहता है. मैं चाहता हूं कि वह मेरे संकोच की परवाह न करे और मुझे उस गुफ़ा में धकेलकर उसके दहाने पर एक ऐसी चट्टान रख दे, जिसे हटा पाने का ख़याल ही उस ख़याल को ख़त्म कर देने के लिए काफ़ी हो. उसी वक़्त वह मुझे गुफ़ा में गुम होता हुआ नज़र आता है. लेकिन मुझे मालूम है कि ज्योंही मुझे यह भ्रम होगा कि मैं उस से मुक्त हो गया हूं, वह मेरी तरफ मुड़ कर कहेगा—तो चलें वापस? और फिर वह मेरे पीछे-पीछे चलता हुआ मेरे क्रंदन-कक्ष में लौट आयेगा. मैं यह सोच ही रहा होता हूं कि उसकी आवाज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनायी देती है—तो चलें वापस?

▣

किसी–किसी शाम वह मान लेता है कि आत्महत्या के सिवा मेरे अज़ाब का कोई इलाज नहीं. मैं उसकी आवाज़ में तंज़ की तलाश करता हूं. वह विश्वास दिलाता है, आज सीधा सच बोल रहा हूं. मैं उसकी तरफ़ यों देखता हूं जैसे कोई क़ैदी जल्लाद की तरफ़. उसी वक्त मुझे महसूस होता है जैसे उसने चेहरे पर नकाब चढ़ा ली हो. मैं सिर झुका लेता हूं. सोचता हूं अब किसी भी तरह वह मेरा सिर कलम कर देगा. काफ़ी देर तक कुछ नहीं होता. सिर उठा कर देखता हूं कि उसकी नकाब में से उसकी आंखें मुझ पर जमी हुई हैं. मैं फ़ैसला नहीं कर पाता कि उनकी झिलमिलाहट मेरे आंसुओं के कारण है या उसके आंसुओं के कारण.

▣

यह बात नहीं कि हमारी तकरार का एकमात्र मजमून हमारी तकरार ही हो, कि हमारे बीच दूसरों और दुनिया के बारे में कोई बहस या विपता ही नहीं उठती हो, कि हमारी अपनी दुनिया पर कभी किसी बेगानी दुनिया का कोई बादल ही न गरजता-बरसता हो. यह बात हरगिज़ नहीं. लेकिन हम बहाना यही करते हैं कि जब हम अपनी दुनिया में होते हैं तो किसी बड़ी और बेगानी दुनिया का कोई खौफ़ या खुदा हम तक नहीं पहुंच पाता. यह बात नहीं कि इस बहाने से हमारा यह शक मिट जाता है कि शायद हमारी अपनी अलग कोई दुनिया नहीं, कि शायद हमारा अलग कोई खौफ़ या खुदा नहीं, कि शायद किसी रोज़ हम अपनी दुनिया से भी इस कदर बेज़ार हो जायेंगे कि हमें महसूस होगा, हम कहीं के नहीं रहे. यह बात भी हरगिज़ नहीं. लेकिन यह निश्चित नज़र आता है कि अब हमारा अधिकतर वक्त अपनी ही दुनिया की पैदाइश और पैमाइश में कटता है और हम इसी में मस्त रहते हैं. यह बात नहीं कि इस मस्ती में कोई मैल नहीं, लेकिन मैल किस मस्ती में नहीं होती! यह बात नहीं कि इस स्वीकार्य से हमें कोई कष्ट नहीं होता, लेकिन कष्ट किस स्वीकार्य से नहीं होता!

और किसी पर ज़ाहिर हुआ या न हुआ हो, मुझ पर हो चुका है कि वह और मैं अभिन्न हैं, कि न वह एक है न मैं, कि कभी वह मुझ में बदल जाता है और कभी मैं उसमें, कि कभी वह मुझे मेरा भ्रम महसूस होता है और कभी मैं उसे उसका. और किसी पर अभी कुछ ज़ाहिर हुआ हो या न हुआ हो, मुझ पर अभी ज़ाहिर कुछ भी नहीं हुआ. इसीलिए मैं आखिर तक अपनी और उसकी खाक छानने पर मजबूर हूं. कभी इसे अपनी नियति मान लेता हूं, कभी महज़ एक अज़ाब. यह बात नहीं कि इस अज़ाब से मुझे कोई आनंद न मिलता हो, लेकिन आनंद किस अज़ाब से नहीं मिलता! और किसी पर यह ज़ाहिर हुआ हो या न हुआ हो, उस पर साफ़ ज़ाहिर हो चुका है कि मुझ पर कभी कुछ भी नहीं ज़ाहिर होगा. इसीलिए शायद वह मुस्करा रहा है. इसीलिए शायद मैं भी मुस्करा रहा हूं—सारी मितलाहटों के बावजूद, सारी असंगतियों के बावजूद.

पांच

अभी-अभी उसके मुखारविंद से यह बरखा हुई है—

तुम हर समय अपनी ही हीन-क्षीण असंगतियों में या मेरे साथ इस सारहीन तकरार में ही क्यों इतने रुपे रहते हो कि इर्द-गिर्द उड़ती हुई धूप और धूल से आक्रांत और अलमस्त दूसरे इंसानों की तरफ़ तुम्हारी नज़र तक नहीं उठती? वह ज़माना भूल गये जब हर समय उन्हीं इंसानों के साथ, उनकी महक और मेहनत में घुले-मिले, उन्हींकी तरह तुम भी इर्द-गिर्द उड़ती हुई धूल और धूप में हारे-मारे उड़ा-फिरा करते थे? वह ज़माना तुम्हारे ज़ेहन से उतरा नहीं, मैं जानता हूं. वह ज़माना अभी तक किसी-किसी रात तुम्हारे दुःस्वप्नों को दहका देता है, मैं जानता हूं. तुम शायद यह दावा करना चाहो कि उस ज़माने में भी, सारी ऊपरी शिरकतों के बावजूद तुम अंदर से अपनी ही हीन-क्षीण असंगतियों और मेरे साथ इस सारहीन बहस में ही रुपे रहते थे. अगर तुम्हारे इस दावे को मान लूं तो भी तुम्हारी मौजूदा किनाराक… मुझे मंजूर नहीं, क्योंकि यह किसी और… ही क़िस्म की है, क्योंकि यह तुम्हें इत… उजाड़-उखाड़ देगी कि तुम बाहर… रहोगे न भीतर के. तुम शायद यह जवा… देना चाहो कि तुम यही चाहते हो. अगर… तुम्हारी यह बात मान लूं तो भी पूछ… चाहूंगा कि अगर यह सच है तो हर व… इतने अकुलाये हुए क्यों रहते हो? तु… शायद यह कहना चाहो कि तुम्हारी… अकुलाहट इस सत्य का सबूत है कि तु… तेज़ी से उस नुक्ते की तरफ़ बढ़ रहे… जहां से बाहर और भीतर का फ़र्क सिफ़… हो जायेगा. लेकिन जिस दलदल में तु… धंसे हुए हो वह कभी तुम्हें किसी नु… तक पहुंचने नहीं देगी. वह तेज़ी तुम्हा… आंखों की धुंध का ही नतीजा है. मे… मानो और अपने बाकी बचे दिन अप… इर्द-गिर्द उड़ती हुई धूप और धूल… बिखरी पड़ी खूबसूरती और बदसूर… का आनंद लूटने और अज़ाब सहने में… गुज़ार दो. दूसरे गये–गुज़रे इंसानों… की तरह. तुम शायद यह शोर मचान… चाहो कि उस आनंद और अज़ाब में… तुम्हारी कोई रुचि नहीं रही, कि वह… और धूल अब तुम्हें बेहूदा नज़र आती… कि तुम दूसरे गये–गुज़रे इंसानों से आ… निकल गये हो या पीछे छूट गये हो… लेकिन तुम नहीं जानते जिस नुक्ते… तलाश में तुम आजकल जिस अज़ाब में… गुज़र रहे हो, वे दोनों कम बेहूदा नहीं, … जीते–जी बेहूदगी से बचाव तुम जैसों… लिए नामुमकिन है, कि तुम्हारी निय… यही है कि इस जैसे-तैसे जहान को कि… जैसे-तैसे जन्नत में बदल डालने… जैसी-तैसी कोशिशों में आखिर तक कट… रहो, जैसे-तैसे. तुम शायद हैरान हो… हो कि यह मैं बोल रहा हूं या तुम, … अगर यह मैं बोल रहा हूं तो वह शैता… या जो अब तक तुम्हें इस जहान से औ… उस जन्नत से बदज़न करता रहा, जि… खुश या खामोश रखने के लिए ही तुम ह… बात और हरकत और धूप और धूल… बेहूदा ठहराते रहे? मैं जवाब दूंगा… यह सब मैं ही बोल रहा हूं और वह… भी मैं ही बोलता रहा, कि मैं कभी कि… संकीर्ण संगति के मातहत नहीं. रहा, … मैं शुरू से वही बोलता चला आया…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

अंतरात्मा

▣ बालकवि बैरागी

रोज का सिलसिला है.

बड़ी फज़र पौने छ: बजे मुसलमानों की मस्जिद का सायरन बजता है. रामलाल पंजाबी जागता है. दिन शुरू करता है.

सुबह के छ: बजते-बजते बोहरों की मस्जिद का सायरन चीखता है. कामरेड जेम्स हड़बड़ा कर उठते हैं. अखबारों की तलाश में मीटर स्टेंड का रास्ता नापते हैं.

सवा छ: बजते-बजते बद्रीविशाल मंदिर के घंटे-घड़ियाल घनघना उठते हैं. हुसैन की बीवी जागती है और सभी बच्चों को झंझोड़ कर जगा देती है.

साढ़े छ: बजे स्कूल की पहली घंटी लगती है और उसके रामलाल, जेम्स और हुसैन के बच्चे स्कूल पहुंच जाते हैं.

दोनों मस्जिदों के आमील साहबान को शिकायत है, "सायरन सुनने के बाद अक्सर मस्जिद में कोई नहीं पहुंचता".

बद्रीविशाल के पुजारी कहते हैं, "मैं अकेला आरती गाया करता हूं. किसी को जागने की फुरसत ही नहीं."

स्कूल का अध्यापक कहता है, "साहब! लड़के न तो पढ़ते हैं, न स्कूल में टिकते हैं. चिड़ियों की तरह आते हैं और फुर्र से उड़ जाते हैं."

मैं अखबारों में अलीगढ़ और संभल के हिंदू-मुस्लिम दंगों और लखनऊ में शिया-सुन्नी फसादों के समाचार ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने की कोशिश करता हूं.

चाय के लिए पास ही जुम्मा पागल हाथ फैलाये खड़ा चिल्लाता है, "भैया साहब! या तो यह अखबार झूठा है या फिर ये सायरन-शंख सही समय पर नहीं बजते हैं."

मैं अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुनने की कोशिश में कभी पूरब को देखता हूं, कभी पश्चिम को! □

जो तुम सुनना चाहते हो, कि मैं आखिर तक वही बोलता चला जाऊंगा. तुम शायद कहना चाहो कि मैं तुम्हें लताड़ने के लिए ही इस लंपट भाषा में बोल रहा हूं, कि तुम पर इसका कोई असर नहीं होगा, कि मैं थक कर खुद-ब-खुद खामोश हो जाऊंगा. तुम्हारा यह कहना बजा होगा, लेकिन यह मत भूलो कि मेरी खामोशी मेरी तकरीर से कहीं ज्यादा ताकतवर है, कि तुम पर मेरी हर अदा और आवाज़ का असर होता है, कि मैं अनथक हूं, कि मैं किसी भी वक्त तुम से मनवा सकता हूं कि तुम अपनी और दुनिया की आंखों में एक ऐसे मुजरिम हो जिसे मुआफ़ करने वाला खुदा मर चुका है. तुम शायद खुदा को इस झमेले में नहीं झोंकना चाहते, इसीलिए मैं उसे झोंक रहा हूं, क्योंकि मुझे मालूम है कि उसकी हस्ती पर तुम्हें विश्वास हो या न हो, उसका नाम सुनते ही तुम इस तरह सनसना उठते हो जैसे वह तुम्हारे सामने खड़ा खिलखिला रहा हो. शायद तुम्हें शक हो कि मैं इस तकरीर के बहाने तुम्हें फिर किसी इम्तिहान में डाल रहा हूं. तुम्हारा शक बजा होगा, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तुम इस शक को शांत न कर सको, या न करो, या नहीं करोगे. हमारी तकरार का इतिहास बताता है कि तुम्हारा हर शक शांत किया जा सकता है—जैसे-तैसे, कमोबेश—कि मेरा कोई भी आदेश या इशारा नज़र-अंदाज नहीं किया जा सकता, कि तुम किसी हकीकत का सामना नहीं कर सकते, कि मेरा हर मज़ाक किसी न किसी मारू हकीकत की तरफ़ संकेत करता है. लेकिन इस तकरार को मैं न किसी मज़ाक पर जोड़ना चाहता हूं न किसी मस्ती पर. आज मैं तुम्हें यह सीधी-सी सीख देने के लिए ही सीधा हुआ हूं: अपने भीतर से बाहर की बहुरूपता को भी कभी-कभी सीधी आंख देख लिया करो, कि उसका आतंक तुम्हारे अहम्केंद्रित आतंक से अलग होगा—दूसरों के दुख-सुख से बना हुआ, एक साथ खूबसूरत और बदसूरत, धूप और धूल में लिपटा हुआ. तुम शायद कहना चाहो कि तुम अपने भीतर बैठे-बैठे ही उस आतंक की कल्पना क्यों नहीं कर सकते? कर सकते हो, एक अरसे से कर ही रहे हो, लेकिन अब तुम्हारी कल्पना में भी वह ताज़गी नहीं रही, अब उसे भी धूप और धूल की खुराक चाहिए, इसीलिए सुझा रहा हूं, मेरे सुस्त-समझ साथी, कि. . . लेकिन अचानक अपने इस ऊंचे अंदाज़ से उबकाई-सी आने लगी है. मैं देख रहा हूं कि इस पर तुम्हें हल्की-सी हैरानी भी हो रही है और खफ़ीफ़-सी खुशी भी. इतनी पुरानी अनन्यता के बावजूद या शायद अकारण जब कभी तुम्हें मुझ में कोई नन्हीं-सी कमज़ोरी नज़र आ जाती है तो तुम यों हैरान और खुश हो उठते हो जैसे तुम्हें अपना ही कोई शर्मनाक दोष मुझ में दिखायी दे गया हो. इतनी पुरानी अनबन के बावजूद तुम्हें यह मालूम नहीं हुआ कि अपनी तमाम इतराहटों के बावजूद मैं तुमसे न कद में बड़ा हूं न हद में, कि अपने तमाम नखरों के बावजूद मैं तुम से न नज़ाकत में बेहतर हूं न हिमाकत में, कि अपनी तमाम कलाबाजियों के बावजूद मैं तुम्हारी तरह मामूली मसखरा नहीं. इसलिए शायद एक आंख से तुम मुझे यों देख रहे हो जैसे कोई जाहिल बेटा अपने मदहोश बाप को, और दूसरी आंख से यों जैसे कोई गरीब बाज़ीगर किसी दूसरे गरीब बाज़ीगर को. वैसे मैं खुश हूं कि तुम मुझे अपना दोस्त भी समझते हो और दुश्मन भी, अपना बाप भी और बाज़ीगर भी, अपना शैतान भी और भगवान भी, अपनी आवाज़ भी और. . . अब मुझ पर रहम करो और मुझे यहीं रोक दो. लेकिन मैं इस तकरीर का अंत इस आवाज़ पर नहीं करना चाहता. मैं यह सोचने जा रहा हूं कि किस आवाज़ पर करूं. तब तक तुम यहीं बैठे रहो, गुम-सुम और गूंगे, किसी बुझे हुए बैरागी या जगमगाते हुए उल्लू की तरह. तब तक के लिए खुदा हाफ़िज़!

▣

मैं उसकी बताई हुई मुद्रा में बैठा उसकी वापसी का इंतज़ार कर रहा हूं. □

● अंग्रेज़ी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, पाट्स्डैम, न्यूयार्क-13676.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

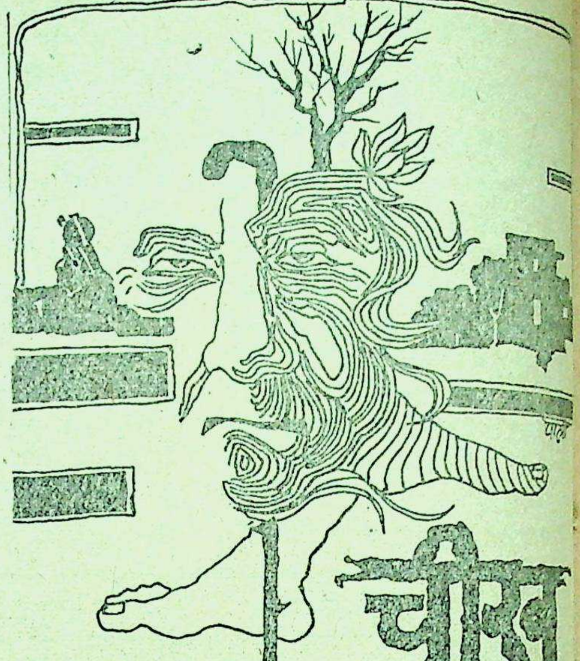

चीख

वेदराही

अंधेरे का एक समंदर था जिसमें सब कुछ डूब गया था. चारों तरफ सुनसान. ऐसा महसूस होता, जैसे कभी इस जगह कोई गांव था, पर अब तो यहां कुछ भी नहीं था. किसी कुत्ते के भौंकने की आवाज़ भी नहीं आती. हवा डर से सहमी हुई और दरख्तों व पत्तों ने अपनी सांस रोक ली थी.

अचानक ही हवा जैसे किसी चीज़ की आहट लेने को रुक गयी. अंधेरे भी कुछ कुलबुलाने से लगे. हल्की सी आवाज़ है—दूर से आती हुई. पत्थरों पर किसी छड़ी के बजने की आवाज़. कोई आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ आ रहा था शायद.

छड़ी की आवाज़ करीब आयी. इस एक आवाज़ से ऐसा लगा जैसे दरख्तों के पत्ते सांस लेने लगे हैं. गलियों में खड़े घर भी आने वाले को देखने के लिए मुस्तैद हो गये.

पैरों से नंगी, छड़ी से रास्ता टटोलती बुढ़िया घरों के पास आ गयी थी. इतनी ठंड में भी उसके कुर्ते के ऊपर सिर्फ एक चादर थी. वह सांस ऐसे ले रही थी जैसे दो सांप फुफकार रहे हों.

वह गली में जाकर एक मकान के सामने आकर खड़ी हो गयी. अचानक उसकी आवाज़ ने अंधेरे को चीरकर रख दिया.

"अरी धन्नो, तू आ पहुंची." यह कहते ही उसने दरवाज़े को छड़ी के साथ ज़ोर से ठोका, "अरी रांड, मैं तो तेरी कुशल-क्षेम पूछने आयी थी, तुझसे कुछ छीनने तो नहीं आयी. दो कच्ची-पक्की रोटियां मैंने आज खुद ही पका ली थीं. वही निगल आयी हूं यह मत समझना, मौसी कुछ मांगने आयी है. मैं तो तुम्हारा हाल जानने आयी हूं. पर लगता है तू सो गयी है. अच्छा, ठीक है, सो मर! सुबह आऊंगी तुम्हारा मातम करने."

छड़ी से रास्ता ढूंढ़ती हुई वह आगे बढ़ी. आश्चर्य की बात कि वह बुढ़िया कौन-सी धन्नो को आवाज़ें दे रही थी? किससे बातें कर रही थी? गांव में उसकी बातें सुनने वाला कौन था? सब घर खाली थे, सब दरवाज़े बंद थे.

एक जगह उसके पांव कीचड़ में सन गये. वह उत्तेजित हो उठी, "बारिश भी कमज़ात आज ही होनी थी? इस कुतिया को भी कोई और दिन नहीं मिला. . ." फिर कुछ नरम होकर बोली, "चलो बरसी तो सही, अच्छा ही हुआ. इतने दिनों से खेत सूखे पड़े थे. सिरसड़ों की कुछ तो प्यास बुझी होगी."

"अरे ओ भीमू," वह फिर एक दरवाज़े के आगे जाकर खड़ी हो गयी, और ज़ोर से दरवाज़े को ठोकर मारी, "तुमने अपने खेत देख लिये हैं ना? तुम्हारी मकई का क्या हाल है?" और एक हाथ उसने दरवाज़े पर रख दिया, "तुम्हरा बेड़ा पार हो. तुम शहर से वापस आ गये हो, मगर मेरे पास आकर मुझ हतभागिनी का हाल तक नहीं पूछा गया तुमसे. अरे, मैं तो हाथ जोड़-जोड़ कर तुम्हारे खेतों की खैर मांगती रही हूं. मैं इतनी गयी-गुज़री तो नहीं कि तुम्हारे एहसान भूल जाऊं. हमेशा ही तुम्हारा दिया हुआ खाया है. अब तक तुम्हारे ही खेतों के दाने खा-खाकर खत्म किये हैं. पर मन से यह कचोट कभी न जायेगी कि तुम भी जाते हुए मुझे भूल गये. अरे पाकिस्तानी तुम्हारे सिर पर तो नहीं आ गये थे .वे तो अब तक भी यहां नहीं आ सके. पर तुम ऐसे कायर निकले कि भागते हुए तुम्हें मेरा ज़रा भी ध्यान नहीं आया. मुझे मालूम है अगर मेरी बेटी लाजो आज ज़िंदा होती तो तुम मुझे पीठ पर लाद कर ले जाते—मेरी बेटी लाजो!" आंखों में भर आये आंसू दुपट्टे के पल्लू से पोंछ लिये.' "कोई बात नहीं. तुम ज़िंदा रहो तुम्हारी बड़ी उमर हो. मुझे यहां रहकर कौन-सा तोप का आ लगा. वैसे ही पूरी-की-पूरी हूं. आराम से बैठी खा मेरी गालियों का तुम बुरा नहीं मनाना. मैं तो पागल हूं. मेरी मानो, अपनी शादी जल्दी रचा डालो. मैं इंतज़ार कर कब ढोलक पर थाप पड़े, गाने वालियों के सुर गूंजें, बाजे वा बाजे बजें. कुछ शोर हो. पाकिस्तानियों का काफी स्यापा कर अब तो जी घबराने लगा है." यह कहते-कहते सचमुच वह गयी. उसके लिए वहां खड़ा रहना मुश्किल हो गया. वह चल दी. उसे यह कहने वाला वहां कोई न था कि वह इतना हल्ला कर रही है.

अंधेरे में छड़ी से रास्ता टटोलती वह आगे बढ़ी. आं चाहे वह नहीं देख पायी, परंतु छड़ी के सहारे उसे कहीं भी नहीं लगती. उसके पैरों की और सांसों की आवाज़ सुनाई दे थी. सामने कुआं था, वह जान गयी. वह दाहिनी तरफ एक की ओर मुड़ गयी. वह दरवाज़ा भी दूसरे दरवाज़ों की तरह का बंद था. छड़ी के साथ उसने दरवाज़े को पीटा, "तुमने दरवाज़ा बंद करना सीख लिया—इंदरीए! तुम्हारा द तो हमेशा आधी-आधी रात तक मुस्टंडों के लिए खुला रह डायन, तुमने तो शहर में जाकर भी अच्छा नाम कमाया भला यहां से भागने की क्या ज़रूरत थी! भागते हुए तुम्हें लेती तो पूछती, तू कहां जा रही है? फौजियों के डर से भाग रही है? तेरा कलेजा तो वे ठंडा कर ही देंगे. तेरे जन्मों की भूख-प्यास मिटा देंगे वे. पर तेरी भूख-प्यास तो धमाकों से ही खत्म हो गयी. चार खसमों को खाकर भी तुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ऐसा मोह था कुलच्छनी? मैंने सोचा था, तू मुझे जरूर साथ ले जायेगी. कहेगी, 'चल मौसी मैं तेरा हाथ पकड़कर ले चलती हूं.' पर तू भी ऐसी भागी कि पीछे मुड़कर नहीं देखा. तू भूल गयी, मैंने कितनी बार तेरे सुहाग गाये थे. ठीक कहते हैं, सभी सुख के साथी हैं. वहां जाकर तुझे क्या मिला. दर-बदर ही हुई होगी. मैं ही तुझसे भली, अपनी जगह बैठी रही. क्या हुआ यहां? किसी के घर की एक ईंट तक नहीं हिली. मैं तो रोज ही दरवाज़े खटखटाती रही हूं. तू ही बता तेरे घर पर कोई बिजली गिरी क्या? चल, अब अपना घर संभाल.बदचलन कहीं की! अच्छा किया जो दरवाजा बंद कर लिया. बेशर्म, अब तुझे कोई पांचवां खसम नहीं मिलेगा."

▣

इंदरी की दहलीज़ को ज़ोर से ठोकर मारकर वह एक तरफ हो गयी. पर फिर अचानक ही चौंक पड़ी, "तू भी आ पहुंचा! मेरे आगे से परे हट, कलमुहां कहीं का. जो हुआ सो हुआ. अगर अब मैंने रात को तेरे रोने की आवाज़ सुनी तो मैं छड़ी से तेरे सिर के दो टुकड़े कर दूंगी."

कोई कुत्ता भी आस-पास नहीं. मालूम नहीं कौन से भरमों में पड़ी थी बुढ़िया! बिना किसी को देखे आवाज़ें लगा रही थी. कुत्ते को भी डांट रही थी. अब वह कुएं की मेड़ पर बैठ गयी. उसे लगा जैसे कोई डोरी से पानी निकाल रहा है. वह कान लगाकर जैसे कुछ सुनने की कोशिश करने लगी. जैसे उसने पानी भरने वाली को पहचान लिया, "रानी है क्या? आजकल बहू,तू ने कुएं पर आना शुरू कर दिया क्या?" रानी को बुलाते समय उसके मुंह में मानो मिसरी-सी घुल गयी, "तेरा घरवाला भी तो कसाई ही निकला. आठ दिन भी घर नहीं रहा और नौकरी पर चला गया. ये फौजी सिपाही बड़े कठोर होते हैं. बड़ा सख्त कलेजा होता है इनका. मोहनू ने यह भी नहीं सोचा कि जो अपना घर छोड़कर आयी है, वह कैसे रहेगी अकेली! अभी तो तेरे मन की पूरी गांठें भी नहीं खुली होंगी. तेरी सास तो डायन है! डायन, कलेजा निकालकर खा लेती है. और जो तेरी दो ननदें हैं, वे पक्की शैतान हैं. मैं तो हर समय तेरे बारे में सोचती रहती हूं. कैसे कटते होंगे तेरे दिन-रात? तू मेरे पास आकर बैठा कर. मन का गुबार मेरे पास निकाल लिया कर, मैं तेरे आंसू पोंछ दिया करूंगी!"

कुछ समय तक फिर उसकी आवाज़ नहीं आयी. लगता था वह थक गयी है. उसकी सांस फूलने लगी और गला भी रुक गया था. हाथ-पांव ठंडे हो गये थे. उसने दोहरा पल्लू डाल लिया और कांपते पांव से आगे की ओर चल दी. गली की आखिरी दीवार का सहारा लेकर वह अंधेरे में इधर-उधर देखने लगी. जैसे रास्ता भूल रही हो. वहां से आगे दो रास्ते जाते थे. वह सामने वाली गली में घुस गयी और आहिस्ता-आहिस्ता अपने-आप से ही बोलने लगी, 'सभी थक गये हैं आते ही खोलियों में घुस गये. मालूम नहीं शहर जाकर इन्होंने क्या-क्या कष्ट भोगे हैं. क्या मालूम वहां खाने को भी कुछ मिला या नहीं? बताओ भला, इन कमजातों को भाग जाने को किसने कहा था? अब आ गये अच्छा ही किया. कितने आराम से अपने-अपने घरों में सो रहे हैं. मैं बेकार ही इनको इस समय तंग करने आयी हूं. कल भी तो मिल सकती थी. लगता है नंबरदार का घर आ गया है. इसको तो अभी सीधा करना पड़ेगा.

"ओ नंबरदार!" दरवाजे पर उसने जोर से छड़ी मारी और सारा जोर लगाकर चिल्लायी, "ओ अपनी मां के खसम, किसकी गोद में छिपा हुआ है. जरा बाहर तो आ बेगैरत! कहां का नंबरदार है तू? वोट लेने थे तो हाथ जोड़-जोड़कर, दोहरा हो-होकर नहीं थकता था और जब हमला हुआ तो सबसे पहले भागा. लानत है तेरी नंबरदारी पर. सौ जूते मारती हूं तेरे नाम पर. कौन-सा मुंह लेकर वापस आया है तू! बेहया, तुझे जरा भी शर्म नहीं आयी? कहां है तेरा बाप? जो बात-बात में अपने वंश की बड़ाई करता था. आज वह होता तो बताती उसकी जात क्या है? मैं गरीब लाचार बुढ़िया तुम लोगों पर इतनी भारी हो गयी, जो मुझ अकेली को छोड़कर भाग खड़े हुए. यह भी नहीं सोचा कि मैं पीछे डर से मर जाऊंगी. मुझे किसी ने यह भी नहीं बताया कि हमला हो गया है और पाकिस्तानी आगे बढ़ आये हैं. मुझे तो तब मालूम हुआ जब गांव में कोई भी नहीं रह गया था. गोलों की आवाज से जानवर भी भाग गये थे."

उसकी देह कांपने लगी. उसकी आंखें आंसुओं से भर गयी थीं,

"अकेली रहकर मैं अभागिन क्या-क्या सहती रही, यह तो तुझे तभी मालूम हो सकता है जब तुझ अकेले को तोपों के गोलों के आगे छोड़ दिया जाये. मौत की जकड़ में तू भी फंसे, तो पता चले. मैं तो जी रही हूं तेरे मुंह पर कालिख पोतने के लिए. अब क्यों चुप हो रहा है? मरे, बाहर आ. तुझे जूते लगाऊं. सुबह तुझे गरदन से पकड़कर बाहर ले आऊंगी और सबसे कहूंगी, इसके मुंह पर थूको!"

बुढ़िया के मुंह से झाग बहने लगी थी. उसकी सारी देह कांप रही थी. अब वह गली से बाहर निकल आयी थी... आहिस्ता-आहिस्ता कदम उठाती हुई वह अपने घर की तरफ चल दी.

अपने घर के आगे आकर वह खड़ी हो गयी है. आंगन के चारों ओर कांटों की बाड़ थी. बबूल का एक पेड़ भी था. अंधेरे में वह भुतहा-सा लग रहा था. बुढ़िया के पांव के नीचे कांटे ही कांटे थे, पर उसे उनकी चुभन महसूस नहीं हो रही थी.

उसने पीछे मुड़कर देखा गांव अंधेरे के समंदर में डूबा हुआ था, लेकिन लगता था बुढ़िया एक-एक घर को देख पा रही है. सुनसान गलियां, बंद दरवाज़े, चुपचाप दीवारें, मरे हुए घर, सभी कुछ तो अंधेरे में उसे दिखाई दे रहा था. खाली गांव की सारी लाचारी उसके आस-पास इकट्ठी होने लगी थी. अचानक ही वह डर से कांपने लगी. एक जोर की चीख उसके मुंह से निकलने लगी, पर दब गयी. दरवाज़े बंद करके वह पागलों की तरह अंदर आकर इधर-उधर दौड़ने लगी. दीवारों से उसका सिर टकरा-टकराकर फटने लगा.

उसके मुंह से चीखें निकलने लगीं. वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी. उसके गले से खून बहने लगा. बाल नोंच-नोंचकर कपड़े फाड़-फाड़ कर वह निढाल हो गयी और आखिर में एक कोने में गिर गयी. उसकी चीखें बंद हो गयी थीं और होंठ बड़-बड़ा रहे थे, "गांव के लोग कब वापस आयेंगे? कहां गये गांव के लोग? वे क्यों नहीं आते? वे क्यों नहीं आते!" □

—बी-35, सर्वोत्तम हाउसिंग सोसायटी, इरला ब्रिज, अंधेरी, बंबई-400058.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मील का पत्थर

सांप : भक्षक और भक्ष्य के संबंधों की कथा

▣ विष्णु प्रभाकर

कोई रचना किसी को क्यों अच्छी लगती है, यह ठीक-ठीक बता पाना असंभव जैसा है, कम-से-कम मेरे लिए तो है ही. फिर भी यह प्रश्न मेरे सामने आया तो तुरंत एक नाम मेरे मस्तिष्क में उभर आया. वह था—'सांप'. बहुत-से दिग्गजों की महान रचनाएं मुझे लगभग कंठस्थ हैं, लेकिन 'सांप' कहानी के स्मरण मात्र से ही वह अपनी समस्त समग्रता में मुझे जकड़ लेती है. न कथानक, न नायक-नायिका, वातावरण ही वहां सब कुछ है और वह भी एक निर्मम, ठंडी तटस्थता से परिव्याप्त है.

कहानी का जीवशास्त्री जैविक अध्ययन के लिए जिस निसंगता से एक बिल्ली को मारने वाले डिब्बे में डालता है, उसी निसंगता से शेष बिल्लियों के लिए दुग्ध तैयार करता है और एक बिल्ली को प्यार भी करता है. वह उसी तरह अपना खाना भी खाता रहता है. कहानी में दूसरा मानव पात्र है, एक घुसपैठिया लंबी महिला, जिसमें आंखों को छोड़कर सब कुछ बेजान है. उसकी बातें भी आवेग-संवेग से रहित, शुष्कता की सीमा तक व्यवहारिक हैं. यह स्थिति जीवशास्त्री में तनाव पैदा करती है. उसी आवेग में वह एक बार लंबा भाषण दे डालता है, पर स्त्री उसी धीमे उतार-चढ़ावहीन लहजे में इतना ही पूछती है, "आप मुझे चूहे बेचेंगे?" एक बार तो डॉक्टर इतना उत्तेजित होता है कि चूहे के स्थान पर बिल्ली रखने का प्रस्ताव करता है, लेकिन तब भी स्त्री निसंगभाव से कहती है, "मैं तो इसे खाना खिलाना चाहती हूं."

अमेरिकन नर-सांप खरीदकर उस स्त्री का यह कहना 'यह मेरा है', अर्थ रखता है. वह उस सांप को खाते देखना चाहती है. सांप का चूहे को खाना सांडों की लड़ाई से अधिक मजेदार दृश्य होता है. वही दृश्य उस तथाकथित बेजान नारी में गति पैदा कर देता है. बदलते मूड्स के उस आरोह-अवरोह को कहानीकार ने लहरों की गति से रेखांकित किया है. प्रारंभ में उसमें भरती लहरें खंभों को सहलाती हैं. जब नारी की उपस्थिति जीवशास्त्री में तनाव पैदा करती है तो लहरें हल्के-हल्के थपेड़े मारने लगती हैं. जिस समय वह नारी एक दूसरे में गुथे सांपों के गुट्ठल के पास आती है तो खंभों के बीच पानी की 'छपक-छपक' सुनाई देने लगती है.

चूहा सांप के पिंजरे में निहायत तटस्थ भाव से दौड़ रहा है, पानी उसांसें लेने लगता है और बेजान नारी की सांसें गहरी-गहरी चलने लगती हैं, उसका शरीर ऐंठकर तन जाता है. सांप आक्रमण के लिए तैयार हो रहा है तो नारी झूमने लगती है और जब चूहा सांप के आक्रमण के बाद उछलकर गिर पड़ता है, छटपटाता है और प्राण तज देता है तो स्त्री मुक्ति की सांस लेकर बदन ढीला छोड़ देती है जैसे नींद में शरीर ढीला छोड़ दिया हो. लेकिन जब वह सांप को खाते देखने की इच्छा प्रगट करती है तो उसके मुंह के सिरों पर फिर हल्की-सी ऐंठन आ जाती है और जब यह नाटकीय दृश्य समाप्त हो जाता है तो लहरें कम हो जाती हैं. फर्श के पार से सीला-सीला भभका ही आ पाता है.

स्त्री चली जाती है, फिर आने का वायदा करके, "मैं इसे जी भरकर खिलाना चाहती हूं. फिर किसी समय साथ ले जाऊंगी." तब एक क्षण को अपने धू... धूमिल सपनों से उसकी आंखें पार नि... जाती हैं, "याद रखिये यह मेरा ... इसका ज़हर मत निकालिये. मेरी इ... है ज़हर इसमें ही रहे. अच्छा नमस्कार..."

जैसे उसकी आंखें सपनों के ... देखती हैं, उसी तरह इस कहानी ... वास्तविक अर्थ के लिए शब्दों के ... देखना होगा. यह यौन-प्रतीकों की कह... है. यौन पिपासा या पर-पीड़न कामुक... कुछ भी कह सकते हैं. अपने सूक्ष्मातिसू... अंकन, निर्मम तटस्थता के कारण ... अत्यंत सार्थक और प्रभावशाली हो ... है. निश्चय ही कथ्य महत्वपूर्ण होता ... लेकिन उतने ही महत्वपूर्ण हैं कहानी के ... तत्व जो उसे कहानी बनाते हैं. उस... संप्रेषणीयता, उसकी भाषा. क्या कहा... में प्रयुक्त भाषा पाठक तक वह कुछ स... षित करने में समर्थ है, जो लेखक कह... चाहता है. कुछ भी व्यर्थ नहीं, पात्र ... व्यर्थ नहीं. एक परेशान जीवशास्त्री, ... लंबी बेजान नारी, एक नर सांप और ... चूहा, ये ही तो रूपायित करते हैं कहा... को, पर बेचारा जीवशास्त्री...

लेकिन यह अत्यंत सशक्त कहा... क्या केवल इतना कुछ ही कहती ... भक्षक और भक्ष्य के सूक्ष्मातिसू... संबंधों, जीवशास्त्री और बेजान महिला ... संवेगों-आवेगों के उतार-चढ़ाव को उके... में लेखक को अद्भुत सफलता मिली ... भक्षक, भक्ष्य को इस तरह मोहाविष्ट ...

जॉन स्टीनबैक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है कि वह भयमुक्त होकर मृत्यु का वरण करता है. ऐसे, जैसे स्वर्ग के द्वार में प्रवेश कर रहा हो. दर्शक को दुख इसीलिए होता है कि वह उससे तादात्म्य कर लेता है. भक्षक और भक्ष्य को क्या शोषक और शोषित की संज्ञा नहीं दी जा सकती? चूहे की प्रतिक्रिया क्या मोहांध शोषित की प्रतिक्रिया नहीं हो सकती? बंधुआ मजदूर मोहांध ही तो होते हैं. धर्म-संस्कार, विधि-विधान सब मोहाविष्ट करते हैं और हम शहीद बन जाते हैं.

जीवशास्त्री कहता है, "ज्ञान के लिए वह हजारों जीवों की हत्या कर सकता है, लेकिन आनंद के लिए एक कीड़ा मारना भी उसके लिए मुश्किल है." लेकिन आनंद की परिभाषा क्या है? क्या यौन-तृप्ति मात्र आनंद है? राजनेता अपने नेतृत्व के लिए प्रदर्शन कराके हत्याएं करवा देता है, तो उसे क्या कहेंगे? युद्ध में वीरगति पाना तो आनंद से भी बढ़ कर पुण्य माना जाता है. धनी व्यक्ति दानी बनने की लालसा में भूख को शाश्वत बनाये रखना चाहता है. . . तर्क से न जाने कितने महत् आदर्शों की सृष्टि की जा सकती है.

पहली बार जब यह कहानी पढ़ी थी तो प्रभाव की सघनता ने तो मुझे जकड़ ही लिया था, अनेक प्रश्न भी मस्तिष्क में उभर उठे थे. सांप क्या मात्र ज्ञान का या यौन-पिपासा का प्रतीक है? शोषण और अंधी सत्ता का प्रतीक नहीं है? मरने वाला कब शहीद बन जाता है, कब साधन या भक्ष्य पात्र होकर रह जाता है? कब शोषित-शापित हो रहता है? वह लंबी बेजान नारी ऐसे ही अनेक प्रश्नों को जन्म देकर लोप हो जाती है और जीवशास्त्री उसकी तलाश में भटकता रहता है, अनुत्तरित प्रश्न की तरह.

प्रश्नानुकलता, आवेग-संवेगों के सूक्ष्म अंकन, चित्रमयता, तटस्थता, निर्मम सघन प्रभावान्विति, अपनी इसी समग्रता में यह कहानी आज भी मुझे आवेष्ठित किये है. बहुत-सी कहानियों ने बहुत से कारणों से मुझे अभीभूत किया है, लेकिन इसके जैसी समग्र अनुभूति कहीं नहीं संभव हुई. निश्चय ही जितना कुछ मैं पढ़ गया उतने में ही. □

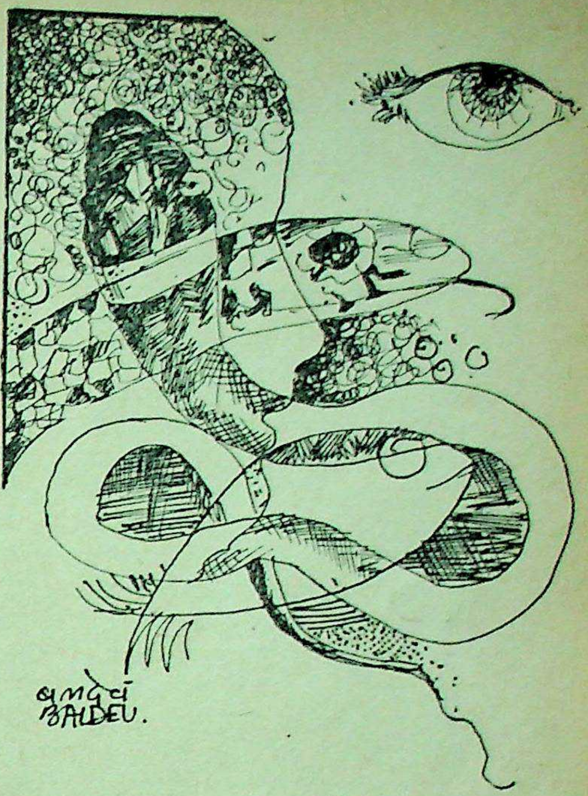

सांप

▣ जॉन स्टीनबैक

झुटपुटे का-सा समय था. डॉक्टर फिलिप्स ने झटके से घुमाकर झोला कंधे पर लादा और बाढ़ के पानी से भर जाने वाली पोखर जैसी जगह से चल पड़ा. पहले पत्थर के ढोके पर चढ़कर कुछ रास्ता पार किया और फिर रबर के बूटों से छप-छप करता सड़क पर निकल आया. मोंटेरी की मछलियों और दूसरी खाद्य-सामग्री को टिन के डिब्बों में भरने वाली सड़क पर उसकी अपनी छोटी-सी पेशेवर प्रयोगशाला थी. वहां तक आते-आते सड़क की बत्तियां जल चुकी थीं. दबा-भिंचा-सा छोटा-सा मकान था—इसका कुछ हिस्सा खाड़ी के पानी के ऊपर लट्ठों के खंभे और पुल लगाकर बना था और कुछ जमीन पर था. बड़े-बड़े लहरदार-लोहे की चादरों के बने मछली वाले, गंधाते गोदामों ने इसे दोनों ओर से बुरी तरह घेर और भींच रखा था.

काठ की सीढ़ियां चढ़कर डॉ. फिलिप्स ने दरवाजा खोला. सफेद चूहे अपने पिंजरे में तार के ऊपर-नीचे जोर-जोर से उछल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूद मचाने लगे और छोटे-छोटे बाड़ों में बंद कैदी बिल्लियां दूध के लिए म्याऊं-म्याऊं करने लगीं. डॉक्टर फिलिप्स ने अपनी चीर-फाड़ की मेज़ पर तेज़ चौंधा डालने वाली रोशनी जला दी और उस लिसलिसे झोले को धम्म से धरती पर पटक दिया. फिर वह खिड़की के पास रखे शीशे के पिंजरों के पास आया और झुककर भीतर देखने लगा. इनमें अमेरिकन सांप बंद थे.

सांप एक दूसरे में गुंथे हुए कोनों में आराम कर रहे थे, लेकिन सबके सिर अलग-अलग साफ दिखायी देते थे. धूमिल आंखें किसी ओर भी देखती नहीं लगती थीं, लेकिन जैसे ही नौजवान डॉक्टर पिंजरे पर झुका कि सिरे पर काली और पीछे से सुर्ख दुहरी जीभें बाहर लपलपा उठीं और धीरे-धीरे ऊपर-नीचे हिलने लगीं. जब सांपों ने उस व्यक्ति को पहचान लिया तो जीभें भीतर कर लीं.

डॉ. फिलिप्स ने चमड़े का कोट एक तरफ फेंका और टीन की अंगीठी पर पानी की केतली चढ़ायी, फिर गिलास-भर मटर उसमें छोड़ दी. अब वह फ़र्श पर पड़े उस झोले को खड़ा-खड़ा घूरता रहा. डॉक्टर दुबला-पतला-नौजवान था. उसकी आंखें चुंधियायी, छोटी और खोयी-खोयी थीं जैसी अक्सर अण्वीक्षण-यंत्र के द्वारा बहुत अधिक देखते रहने वालों की हो जाती हैं. उसके छोटी खूबसूरत-सी दाढ़ी थी. गहरी-गहरी सांसों-सी सिसकारी भरती हुई भाप की धारी चिमनी में जा रही थी और अंगीठी से गरमाहट का भभका आ रहा था. मकान के नीचे छोटी-छोटी लहरें हौले-हौले खंभों को सहला रही थीं. कमरे में चारों ओर लकड़ी के खानों में एक के ऊपर एक अजीबोगरीब इमर्तबान सजे थे. इनमें समुद्री वस्तुओं और जीवों के नमूने ढंके रखे थे. यह प्रयोगशाला भी थी इन्हीं सबके लिए.

डॉ. फिलिप्स ने बगल का दरवाज़ा खोलकर सोने वाले कमरे में प्रवेश किया. इसमें चारों ओर किताबों की लाइनें लगी थीं. एक फौजी खाट पड़ी थी. पढ़ने के लिए रोशनी और एक ग़ैर-आरामदेह क़िस्म की लकड़ी की कुर्सी रखी थी. उसने अपने रबर के बूट खींच-खींचकर उतारे और भेड़ की खालों के स्लीपर पहन लिये. जब वह बगल वाले कमरे में वापस लौटा तो केतली का पानी सनसनाने लगा था.

उसने झोला उठाकर मेज़ पर सफेद रोशनी के नीचे रखा और उसमें से दो दर्जन साधारण तारक-मछलियां उलटकर बाहर निकलीं. इन्हें उसने मेज़ पर फैला दिया. फिर उसकी खोयी-खोयी आंखें पिंजरों में बंद उछल-कूद मचाते चूहों की ओर मुड़ीं. काग़ज़ के एक थैले से अनाज के दाने निकालकर उसने खाने वाले तसलों में डाले. चूहे फौरन ही एक दूसरे को खूंदते तारों से नीचे की ओर दौड़े और खाने पर टूट पड़े. कांच की एक अलमारी पर केकड़े और जेली मछली के बीच दूध की बोतल रखी थी. डॉक्टर फिलिप्स ने झुककर दूध उठाया और बिल्लियों के पिंजरे की ओर बढ़ा. लेकिन डिब्बों को दूध से भरने से पहले ही उसने हाथ बढ़ाकर आहिस्ता से एक बड़ी, लंबे-लंबे हाथ-पांवों वाली मरगिल्ली-सी, चितकबरी बिल्ली को पकड़कर बाहर निकाल लिया. पल-भर उसे हाथ से थपथपाया और फिर उसे काले पुते हुए बक्से में डाल दिया. ढक्कन बंद करके कुंडी चढ़ा दी. इसके बाद एक हैंडिल घुमा दिया. अब उस मारने वाले डिब्बे में गैस भरने लगी. काले डिब्बे में हल्की-हल्की उछल-कूद हो रही और वह तसलों को दूध से भरता रहा. एक बिल्ली उसके हा से सटकर कमान जैसी दुहरी हो गयी तो वह मुस्करा पड़ा. उ उसकी गर्दन प्यार से सहला दी.

डिब्बे में अब शांति हो गयी थी. उसने हैंडिल उलटा घुमा दिया. ज़रूर उस रंध्रहीन डिब्बे में डटकर गैस भ होगी.

अंगीठी पर मटर भरे गिलास के चारों ओर पानी बुरी त खौल रहा था. डॉ. फिलिप्स ने एक संडासी से पकड़कर गिल बाहर निकाला और उसे खोलकर मटर कांच की एक तश्त में उलट लिये. खाते-खाते वह मेज़ पर रखी उन तारक मछलि को देखता रहा. किरणों के बीच में दूधिया द्रव की छोटी-छो बूंदे पसीज-पसीजकर निगल आयी थीं. उसने फटकने की त बची हुई मटर एक तरफ फेंक दी और जब सब फैल गयीं तश्तरी धोने वाले नांद में रखकर अपनी औजारों वाली अलमा की ओर बढ़ा. यहां से उसने एक अण्वीक्षण-यंत्र और कांच तश्तरियों की एक गड्डी निकाली. नल द्वारा एक-एक करके सारी तश्तरियों को समुद्री पानी से भरा और तारक-मछलियों पास एक लाइन में उन्हें सजा दिया. अपनी घड़ी निकाली औ घनी उमड़ती सफेद रोशनी के नीचे मेज़ पर रख दिया. के नीचे लहरें उसमें भरती हुई-सी खंभों को सहला रही थ उसने एक दराज़ से आंख में दवा डालने वाली कांच की ए पिचकारी निकाली और एक तारक-मछली के ऊपर झुक गया

ठीक उसी समय लकड़ी की सीढ़ियों पर लपकती, दबे कद की आवाज़ के साथ-साथ दरवाज़े पर एक तेज़ दस्तक सुनायी दी दरवाज़ा खोलने जाते हुए नौजवान के चेहरे पर झुंझलाह की हल्की तल्खी झलक उठी. दरवाज़े में एक पतली-दुब लंबी-सी स्त्री खड़ी थी. वह भंवर-काला सूट पहने थी. औ उसके सीधे-सीधे बाल काले चपटे माथे पर नीचे तक उग आ थे. अब इस तरह अस्त-व्यस्त थे मानो आंधी में उड़ते रहे तेज़ रोशनी में उसकी काली-काली आंखें चमक रही थीं.

उसने मुलायम, रुंधी-सी आवाज़ में पूछा, "मैं भीतर जाऊं न? आपसे कुछ बातें करना चाहती हूं."

"इस समय तो मैं बहुत व्यस्त हूं." उसने बेमन से क "मुझे तो सारे काम वक्त पर ही करने पड़ते हैं." लेकिन वह दरवा से हटकर खड़ा हो गया था. लंबी स्त्री तिरछी होकर भीतर गयी.

"आपको जब तक मुझसे बात करने की फुरसत न मिलेगी, मैं चुपचाप बैठी रहूंगी."

उसने दरवाज़ा बंद कर लिया और सोने के कमरे से उ गैर-आरामदेह क़ुर्सी को उठा लाया, "देखिए", "उसने मा मांगते हुए कहा, "कार्य की प्रक्रिया शुरू हो गयी है और उसमें लगना है." जाने कितने आदमी यों ही चले आते हैं दुनिया भर के सवाल पूछते हैं. साधारण नासमझ लोगों को सा कार्य-प्रणाली समझाने के लिए उसके पास अलग से कोई साध या सुविधा नहीं है. उनसे तो वह बिना सोचे बोल देता है "आप यहां बैठिए, दो मिनट बाद मैं आपकी बातें सुनूंगा.

वह लंबी स्त्री मेज़ के ऊपर झुक आयी. आंख में दवा डाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पिचकारी से डॉक्टर ने तारक-मछलियों की किरणों के बीचों-बीच से द्रव इकट्ठा किया और पिच्च से पानी के एक प्याले में छोड़ दिया. इसके बाद उसने कुछ दूधिया द्रव सूंता और फिर पिचकारी से पानी को धीरे-धीरे हिलाया. अब उसने अपना वही व्याख्यान-भाषण जल्दी-जल्दी बोलना शुरू किया :

"जब ये तारक-मछलियां अपने पूर्ण विकसित यौवन पर आ चुकती हैं तो हल्के ज्वार का खुला विस्तार पाकर इनके शरीर से वीर्य-कीटाणु और डिंब निकलने लगते हैं. कुछ पूर्ण यौवन वाली तारक-मछलियों के नमूने चुन कर और उन्हें पानी से बाहर निकाल कर मैं उन्हें हलके ज्वार की सारी अवस्था और वातावरण में यहां रखता हूं. अब मैंने वीर्य और डिंबों को मिला दिया है. इस घोल में से थोड़ा-थोड़ा लेकर अब मैं इन सब परीक्षण-गिलासों में रखूंगा. दस मिनट बाद पहले गिलास वालों को सफेद कपूर डालकर मार डालूंगा, फिर बीस मिनट बाद दूसरे वर्ग को मारूंगा. और फिर इसी तरह हर बीस मिनट बाद नये वर्ग को मारता जाऊंगा. इससे मैं सारी प्रक्रिया को अलग-अलग अवस्थाओं में पकड़ सकूंगा और इस सारी प्रक्रिया-माला को माइक्रोस्कोप की कांच की स्लाइडों पर जमाकर जैविक अध्ययन के लिए तैयार कर लूंगा," वह रुक गया, "आप इस पहले वर्ग को अण्वीक्षण-यंत्र से देखेंगी?"

"नहीं, शुक्रिया."

तेज़ी से वह उसकी ओर घूमा. लोग तो हमेशा गिलासों में देखने को उधार खाये रहते हैं. वह मेज की तरफ बिल्कुल न देखकर—देख रही थी, खुद उसकी तरफ. उसकी काली-काली आंखें थीं तो उसकी दिशा में; लेकिन लगता था उसे देख नहीं रहीं. उसने महसूस किया, अरे! इस स्त्री की आंखों के तारे तो शेष पुतलियों की तरह ही काले-काले हैं—पुतलियों और तारों के बीच में किसी भी रंग की कोई लाइन नहीं है. डॉ. फिलिप्स उसके इस जवाब से झल्ला उठा. यों उसे सवालों का जवाब देने से बड़ी ऊब होती थी—क्योंकि इससे हाथ के काम में दिलचस्पी कम हो जाती थी और इसी से उसे हमेशा बड़ी कोफ्त होती. अब उसके मन में हुआ कि किसी तरह इस स्त्री को उकसाया जाये.

"पहले दस मिनट राह देखने के दौरान ही मुझे एक काम और भी करना है. कुछ लोग इसे देखना पसंद नहीं करते. अच्छा हो जब तक मैं इसे खत्म करूं, आप कुछ देर के लिए उस कमरे में चली जायें."

"नहीं," उसने अपने उसी मुलायम और सपाट लहजे में कहा, "आपकी जो इच्छा हो सो कीजिए. मैंने कहा न, आपको मुझसे बात करने की फुरसत होने तक मैं राह देखूंगी." उसके हाथ पास-पास उसकी गोद में रखे थे. वह बड़े आराम और इत्मीनान से बैठी थी. उसकी आंखें जरूर चमकीली थीं, लेकिन बाकी सब कुछ ऐसा था मानो बेजान हो. डॉक्टर ने मन ही मन कहा, 'देखने से लगता है कि बहुत ही धीमी रफ्तार से मांस-पेशियां परिवर्तन की स्थिति में हैं—इतनी धीमी जितनी मेंढक की होती हैं.' स्त्री को उसकी इस मुर्दनी से झंझोड़ने की प्रबल इच्छा ने उसे फिर आविष्ट कर लिया.

उसने लकड़ी का एक पालना-जैसा लाकर मेज पर रखा, चीर-फाड़ करने का चाकू और कैंची पिचकने वाली नली में लगी पोली-सुई संवार कर रखी, फिर मारने वाले डिब्बे से उसने उस बेजान मुर्दा बिल्ली को निकाला और पालने पर रखकर उसकी टांगों को इधर-उधर लगे हुकों से बांध दिया. कनखियों से उसने स्त्री को देखा. उसमें कतई कोई हरकत नहीं थी. वह उसी तरह अब भी आराम से बैठी थी.

रोशनी में बिल्ली मानो दांत निकाल कर चिढ़ा रही थी. उसकी सुर्ख जीभ नुकीले दांतों के बीच दबी थी. सधे हुए कुशल हाथों से डॉ. फिलिप्स ने गले के पास से उसकी खाल काट डाली. चाकू से चीरा-फाड़ी करते हुए उसने हृदय से और भागों तक रक्त ले जाने वाली नली को बाहर निकाल लिया. अपने अचूक और बेझिझक हाथों से फुफ्फुस में सुई रखकर आंतों से उसे कसकर बांध दिया. "यह मसालेदार है," उसने समझाया, "बाद में मैं इंजेक्शन की सहायता से इसके सारे स्नायु-मंडल में पीला द्रव पहुंचाऊंगा, लाल द्रव हृदय की धमनियों में दूंगा. इससे रक्त-प्रवाह का विश्लेषण किया जा सकेगा, जैसा कि प्राणिशास्त्र की कक्षाओं में. . . . "

उसने फिर उस स्त्री की तरफ घूमकर देखा. उसकी आंखों पर जैसे धूल की एक परत फैली थी. वह भावना-हीन निगाहों से बिल्ली के कटे हुए गले की तरफ देखे जा रही थी. खून एक बूंद भी नहीं गिरा, कटाई बहुत ही साफ हुई थी. डॉक्टर फिलिप्स ने घड़ी देखी : 'पहले वर्ग का समय पूरा हो गया.' उसने सफेद कपूर के कुछ चौकोर चिकने टुकड़े पहले वाले परीक्षण-गिलास में डालकर हिलाये.

स्त्री की उपस्थिति उसके मन में तनाव पैदा कर रही थी. अपने पिंजरे में चूहे फिर तार पर जा चढ़े थे और धीरे-धीरे चूं-चूं कर रहे थे. मकान के नीचे की लहरें खंभों पर हल्के-हल्के थपेड़े मार रही थीं.

नौजवान डॉक्टर के शरीर में शीत की एक झुरझुरी-सी आयी. उसने अंगीठी में कुछ कोयले डाले और आकर बैठ गया. उसने कहा, "अब बीस मिनट तक मुझे कुछ नहीं करना." उसने देखा, स्त्री के निचले होंठ और चिबुक के सिरे के बीच की ठोड़ी कितनी जरा-सी है. लगा जैसे वह धीरे-धीरे जागी हो—मानो चेतना के किसी गहरे कुएं से निकल कर बाहर आ रही हो. सिर ऊंचा उठा, काली-काली धूसर आंखें एक बार कमरे में चारों ओर घूमीं फिर डॉक्टर पर आकर टिक गयीं.

"मैं तो राह देख रही थी," वह बोली. हाथ यों ही गोद में पास-पास रखे रहे, "आपके पास सांप होंगे?"

"किसलिए? जी हां, हैं तो." उसने अपेक्षाकृत ऊंचे स्वर से कहा, "मेरे पास करीब दो दर्जन अमेरिकन सांप हैं. उनका जहर सूंतकर मैं विषनाशक प्रयोगशालाओं में भेज देता हूं."

वह लगातार उसे देखे जा रही थी; लेकिन उसकी आंखें जैसे उस पर केंद्रित नहीं हो पा रही थीं. लगता था जैसे वे उसके चारों ओर एक बड़े दायरे में देख रही हैं—इस तरह उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं, "आपके पास नर-सांप होगा? मेरा मतलब अमेरिकन नर-सांप?"

"देखिए, इत्तफाक ही है. मेरा खयाल है मेरे पास होगा. एक दिन सुबह-सुबह आया तो देखा कि एक बड़ा-सा सांप एक छोटी नागिन के साथ ऊं-ऊं...के साथ सहवास कर रहा था. देखिए, मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक पता है कि मेरे पास नर-सांप है."

"है कहां वह?"

"देखिए, उस खिड़की के पास कांच के पिंजरे के ठीक नीचे."

उसका सिर धीमे-से उधर घूम गया, लेकिन उसके दोनों शांत हाथ यों ही निश्चल पड़े रहे. वह फिर उसकी ओर घूमी, "देख सकती हूं न?"

उठकर वह खिड़की के पास रखे कांच के केस के पास आ गया. रेतीले तले पर एक दूसरे में गुंथा सांपों का गुट्ठल पड़ा था, लेकिन उनके सिर अलग-अलग साफ दीखते थे. जीभें बाहर निकल आयीं और एक क्षण तक लपलपाती रहीं. फिर कंपन के लिए हवा को टटोलती हुई-सी ऊपर-नीचे लहराती रहीं. डॉक्टर फिलिप्स ने घबराकर सिर घुमाया. स्त्री उसके पास ही खड़ी थी. वह कुर्सी से कब उठ आयी, डॉक्टर को पता ही नहीं लगा. उसे तो सिर्फ खंभों के बीच में पानी की छपक्-छपक् सुनाई दी थी या तारों की जाली पर चूहों का दौड़ना सुनाई दिया था.

स्त्री ने धीरे से पूछा, "जिस नर-सांप के बारे में आप बता रहे थे, वह कौन-सा है?"

उसने एक पिंजरे के एक कोने में अकेले पड़े मोटे-से भूरे-भूरे नाग की ओर इशारा किया, "वो वाला. होगा करीब पांच फीट लंबा. टैक्सास प्रांत का है. हमारे प्रशांत सागर के किनारों वाले सांप अक्सर छोटे होते हैं. यह सारे के सारे चूहे हड़प जाते हैं. जब मुझे दूसरे सांपों को खिलाना होता है तो बाहर निकाल लेता हूं."

स्त्री झुककर उस भोंडे सूखे-सूखे भोंथरे सिर को घूरती रही. दुहरी जीभ निकल आयी और काफी देर तक थरथराती हुई झूलती रही, "अच्छा, आपको यकीन है कि यह सांप ही है. सांपिन नहीं?"

"ये अमेरिकन सांप होते बड़े मज़ेदार हैं," वह स्निग्ध स्वर में बोला, "इसके बारे में जो भी सामान्य सिद्धांत निकालिए गलत निकलता है. अमेरिकन सांपों के बारे में निश्चयपूर्वक तो मैं भी नहीं बता पाऊंगा, लेकिन, जी हां, यह विश्वास दिलाता हूं कि है यह नर-सांप ही."

उसकी निगाहें उस चपटे-से सिर से नहीं हिलीं, "आप इसे मेरे हाथ बेचेंगे?"

"बेचूंगा?" वह चीख-सा पड़ा, "आपके हाथों बेचूंगा?"

"आप तो नमूने की चीजें बेचते हैं. क्यों, बेचते हैं न?"

"ओह हां, जी हां, बेचता तो हूं, बेचता तो हूं."

"कितने का है? पांच डालर का? दस?"

"अरे, पांच से ज्यादा का नहीं है. लेकिन—आपको क्या इन अमेरिकन सांपों के बारे में जानकारी है? कहीं आपको काट-वाट न ले."

पल भर वह उसे देखती रही, "मैं इसे साथ नहीं ले जाना चाहती, मैं तो इसे यहीं रहने दूंगी. लेकिन—चाहती हूं, यह मेरा होकर रहे. चाहती हूं कि मैं यहां आकर इसे देखूं, खिलाऊं और मानूं कि यह मेरा है." उसने एक छोटा-सा बटुआ खोलकर पांच डालर का नोट निकाल लिया, "लीजिए यह, अब यह मेरा हुआ."

डॉक्टर फिलिप्स को अब डर लगने लगा, "उसे देखने तो आप बिना इसे खरीदे भी आ सकती हैं!"

"मैं चाहती हूं यह मेरा हो."

"ओह गॉड!" डॉक्टर चिल्ला उठा, "बातों में मुझे तो समय का भी खयाल नहीं रहा," वह मेज़ की ओर लपका, "तीन मिनट पूरे हो चुके. खैर, कोई खास नुकसान नहीं हुआ होगा." उसने सफेद कपूर के टुकड़े दूसरे परीक्षण-गिलास में घोले और फिर जैसे वह खुद-ब-खुद वापस सांपों के पिंजरे के पास खिंच गया. स्त्री अभी भी उसी सांप को घूरे जा रही थी.

स्त्री ने पूछा, "खाता क्या है यह?"

"मैं तो इसे सफेद चूहे खिलाता हूं. उस तरफ वाले पिंजरे के चूहे."

"इसे आप दूसरे पिंजरे में रखेंगे? मैं इसे खिलाना चाहती हूं."

"लेकिन इस समय इसे खाने की जरूरत ही नहीं है. अपने इस हफ्ते का चूहा यह हजरत पहले ही खा चुके हैं. कभी-कभी तो ये लोग तीन-तीन चार-चार महीनों तक कुछ नहीं खाते. मेरे पास एक सांप था, उसने एक साल से ऊपर तक कुछ भी नहीं खाया."

अपने उसी धीमे उतार-चढ़ाव-हीन लहज़े में स्त्री ने पूछा, "आप मुझे चूहा बेचेंगे?"

डॉक्टर ने कंधे झटके, "आप अपने सांप को खाते देखना चाहती हैं? अच्छी बात है. मैं दिखाता हूं आपको. एक चूहे का दाम पच्चीस सेंट होगा. एक तरफ से देखें तो सांप का चूहे को खाना सांडों की लड़ाई से भी ज्यादा मज़ेदार दृश्य है और दूसरी तरफ से देखें तो यह सिर्फ सांप के भोजन करने का एक तरीका है." उसके लहज़े में कड़वाहट आ गयी थी. प्राकृतिक कार्य-कलाप को जो लोग खेल और क्रीड़ा बना डालते हैं—उनसे उसे नफ़रत थी. वह खिलाड़ी नहीं, जीव-शास्त्री था. ज्ञान के लिए वह हजारों जीवों की हत्या कर सकता है, लेकिन आनंद के लिए एक कीड़ा मारना भी उसके लिए मुश्किल है—यह उसके दिमाग में पहले से ही एकदम साफ था.

स्त्री ने धीरे-धीरे अपना सिर उसकी ओर घुमाया और उसके पतले-पतले होठों पर मुस्कराहट झलक उठी, "मैं अपने सांप को खिलाना चाहती हूं," वह बोली, "मैं इसे दूसरे पिंजरे में रखूंगी." उसने पिंजरे का ऊपर का ढक्कन खोल लिया था और इससे पहले कि डॉक्टर जाने कि वह क्या कर रही है, उसने अपना हाथ भीतर डाल दिया. डॉक्टर एकदम छलांग लगाकर उसके पास पहुंचा और झट उसे पीछे खींच लिया. ढक्कन धड़ से गिर कर बंद हो गया.

"आपको अक्ल है या नहीं?" उसने गुस्से से पूछा, "हो सकता है वह आपको जान से न मारता; आपकी तबीयत ज़रूर अच्छी तरह दुरुस्त कर देता. फिर मेरी लाख कोशिशों के बाद भी आपको तारे नज़र आते रहते."

वह निरुद्विग्न शांत-भाव से बोली, "तो फिर आप ही इसे दूसरे पिंजरे में रख दीजिए."

डॉ. फिलिप्स को जैसे किसी ने झकझोर डाला. उसे महसूस हुआ कि जो आंखें किसी को भी देखती नहीं लग रही हैं—वह उन्हें सीधे देखने से कतरा रहा है. उसे लगा कि पिंजरे में चूहे डालना निहायत ही गलत है—जैसे इसमें कोई घोर पाप है. लेकिन ऐसा सब उसे क्यों लगा, वह खुद नहीं जान पाया. जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ऐरे-गैरे ने चाहा है, उसने पिंजरे में चूहे डाले हैं; लेकिन आज रात, इस विशेष इच्छा ने उसे इतना अस्वस्थ और असंतुलित बना डाला है कि मन खराब हो गया है. वह खुद अपने लिए इस सारी बात को समझने की कोशिश करता रहा.

"यों इसे देखना है तो बड़ा अच्छा," वह बोला, "इससे आपको पता चलेगा कि सांप कैसे अपना काम करता है? इससे यह भी लगता है कि आपके दिल में अमेरिकन सांपों के लिए इज्जत है. लेकिन एक बात और भी है, सांप किस तरह अपने शिकार को मारता है, इसे लेकर हजारों लोगों को अजब-अजब खौफनाक खयालात होते हैं. मुझे लगता है इसका कारण चूहे के साथ अपना तादात्म्य कर लेना है. उस समय चूहा व्यक्ति का अपना प्रतिबिंब हो जाता है. लेकिन एक बार आप इसे अपनी आंखों से देख लें, तो सारी चीज बड़ी ही निरपेक्ष और तटस्थ लगे. चूहा केवल शुद्ध चूहा रह जाता है और सारा खौफ़ हवा हो जाता है."

उसने दीवार पर लगी एक लंबी-सी छड़ी उठा ली, इसमें एक सरकने वाला चमड़े का फंदा लगा था. जाल खोलकर उसने फंदा बड़े सांप के सिर पर डालकर खींचा और गांठ को कस दिया. एक कर्णभेदी खड़खड़ाहट सारे कमरे में भर गयी. जब उसने सांप को उठाकर खाने वाले पिंजरे में डाला तो छड़ी की मूठ पर सांप का मोटा-सा शरीर बुरी तरह लिपट गया था. कुछ देर तो उस पिंजरे में वह हमला करने को तैयार तना खड़ा रहा, लेकिन फिर धीरे-धीरे उसकी फुंकारें बंद हो गयीं. सांप रेंगता हुआ कोने में सरक गया और अपने शरीर को हिंदी अंक चार की शक्ल में डालकर चुपचाप लेट गया.

"देखा आपने," नौजवान डॉक्टर ने समझाया, "ये सांप काफी पालतू हैं. मेरे पास तो ये काफी दिनों से हैं. मेरा ख्याल है कि अगर मैं चाहूं तो इन्हें ही अपना कार्य-क्षेत्र बना सकता हूं, लेकिन जो भी इन अमेरिकन सांपों को अपना कार्य-क्षेत्र बनाता है, देर-सबेर इनके दांतों का शिकार हो जाता है और इस तरह तकदीर के साथ खिलवाड़ करने का मेरा कतई इरादा नहीं है." उसने स्त्री को नजर भरकर देखा. पिंजरे में चूहा डालना उसे अच्छा नहीं लग रहा था—जैसे बड़ी वितृष्णा हो रही हो. स्त्री अब नये पिंजरे के सामने जा पहुंची थी. उसकी काली-काली आंखें फिर से सांप के पथरीले सिर को टकटकी लगाये देखे जा रही थीं.

बोली, "चूहा डालिए न भीतर!"

बड़े बेमन से वह चूहों के पिंजरे की ओर बढ़ा. जाने क्यों, उसे चूहे पर बड़ा तरस आ रहा था. इस तरह तो उसने पहले कभी भी महसूस नहीं किया. तार की जाली के पीछे अपनी ओर उछलते सफेद-सफेद शरीरों वाले चूहों के खचपच-खचपच करते ढेर को उसकी आंखें टटोलती-सी देखती रहीं. 'कौन-सा हो?' उसने मन ही मन कहा, 'इनमें से कौन-सा चूहा हो?' अचानक गुस्से से वह स्त्री की तरफ घूम पड़ा, "आप कहें तो चूहे की बजाय एक बिल्ली न रख दूं भीतर? तब आप देखेंगी कि सचमुच की लड़ाई क्या होती है? बिल्ली, हो सकता है जीत भी जाये, लेकिन अगर वह जीत गयी तो हो सकता है सांप का काम तमाम कर डाले. आप चाहें तो मैं आपके हाथ एक बिल्ली बेच सकता हूं."

स्त्री ने उसकी ओर मुड़कर देखा तक नहीं, "एक चूहा रख दीजिए भीतर", वह बोली, "मैं तो इसे खाना खिलाना चाहती हूं."

डॉक्टर ने चूहों का पिंजरा खोला और अपना हाथ भीतर ठूंस दिया. उंगलियों की पकड़ में एक पूंछ आ गयी तो उसने एक लाल-लाल आंखों वाले गोल-मटोल चूहे को खींचकर ऊपर उठा लिया. पहले तो वह उसकी उंगलियों को काटने की कोशिश में छटपटाया, पर फिर हारकर चारों हाथ-पांव फैला कर चुपचाप बेजान की तरह पूंछ से लटका रहा. डॉक्टर तेजी से कमरा पार करके आया, खाने वाले पिंजरे का ढक्कन खोला और चूहे को फर्श पर सांप के ऊपर फेंक दिया.

"लीजिए, देखिए अब," उसने लगभग चीख कर कहा.

चूहा पांवों के बल गिरा, चारों तरफ घूमा और अपनी सुर्ख नंगी पूंछ की तरफ सूं-सूं करता रहा. फिर नथुने फलाकर संघते हुए से निहायत तटस्थ भाव से रेत पर दौड़ लगाने लगा. कमरे में एकदम स्तब्धता छायी थी. डॉ. फिलिप्स की समझ में नहीं आया कि नीचे के खंभों में पानी ही उसासें ले रहा है या स्त्री की सांसें गहरी-गहरी चलने लगी हैं. एक कनखी से उसने देखा, स्त्री का शरीर ऐंठ और तन-सा गया है.

बहुत ही आहिस्ते और धीरे-धीरे सांप आगे सरका. जीभ बाहर और भीतर लपलपाने लगी. सारी हरकत इतनी नामालूम, आहिस्ता और धीरे-धीरे हो रही थी कि लगता ही नहीं था कि सांप के भीतर कोई हरकत हो भी रही है. पिंजरे के दूसरे सिरे पर चूहा आत्माभिमान से तना हुआ-सा बैठ गया था और सिर झुकाकर अपनी छाती के मुलायम, महीन-महीन बालों को चाटने लगा था. अपनी गर्दन को दृढ़तापूर्वक रोमन अक्षर 'एस' की शक्ल में रखे हुए सांप आगे सरक रहा था.

चुप्पी नौजवान के सिर पर मानो धक-धक बज रही थी. उसे लगा जैसे खून उसके शरीर में सन्नाने लगा है. उसने ऊंचे स्वर में कहा, "देखिए, सांप हमला करने के लिए सिर के मरोड़ को हमेशा तैयार रखता है. ये अमेरिकन सांप बड़े ही चौकन्ने होते हैं. कहना चाहिए बड़े ही डरपोक जीव होते हैं. यह सारी कार्यवाही बेहद नाजुक होती है. जैसी कुशलता और चतुराई से सर्जन अपना काम करता है, ठीक उसी तरह सांप का भोजन भी बड़ी कुशलता और सावधानी से होता है. सर्जन जानता है कि किस जगह कौन औजार काम आयेगा—वहां वह इस या उस औजार को प्रयोग करने का जोखिम नहीं उठा सकता."

अब तक सांप पिंजरे के बीचों-बीच सरक आया था. चूहे ने सिर उठाया, सांप को देखा और फिर उसी तटस्थता और इत्मीनान से अपनी छाती को चाटने लगा.

"दुनिया की यह सबसे खूबसूरत और आकर्षक चीज है," नौजवान ने बताया. खून उसकी नसों में बजने लगा था, "साथ ही यह दुनिया की सबसे खौफनाक चीज भी है."

सांप अब पास आ गया था. अब उसका सिर रेत से कुछ इंच ऊंचा उठ आया था. दूरी का अंदाज लगाता हुआ सिर घात लगाये हुए आगे-पीछे झूम रहा था. डॉ. फिलिप्स ने फिर स्त्री की ओर निगाहें घुमायीं. उत्तेजना और भय से यह सिहर उठा. वह भी झूम रही थी . . . ज्यादा नहीं, लेकिन बहुत ही हल्के-हल्के बेमालूम-सी, सिर्फ लगती थी.

चूहे ने फिर सिर उठाया और सांप को देखा. वह चारों पांवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बल गिरा और यों ही सिर सांप की तरफ किये-किये पीछे सरका—कि तभी खट. . . .एक बिजली-सी कौंधी. कुछ भी देख पाना असंभव था. जैसे किसी अदृश्य झपाटे के नीचे आ गया हो, चूहा इस तरह चिचिया उठा. सांप तेज़ी से फिर अपने उसी पहले वाले कोने में लौट आया और फिर वहीं लेट गया—हां, उसकी जीभ अभी भी लगातार लपलपा रही थी.

"कमाल है!" डॉ. फिलिप्स चिल्ला उठा, "ठीक कंधों की हड्डियों के बीचों-बीच चोट की है. दांत करीब-करीब दिल तक पहुंच गये होंगे."

छोटी-सफेद धौंकनी की तरह चूहा अभी भी खड़ा-खड़ा हांफ रहा था. सहसा वह एकदम ऊपर उछला और एक करवट के बल गिर पड़ा. एक सेकेंड उसके पांव ऐंठन से हवा में छटपटाते रहे और फिर प्राण पखेरू उड़ गये.

स्त्री ने मुक्ति की सांस छोड़कर बदन ढीला किया, जैसे नींद में शरीर ढीला छोड़ दिया हो.

"क्यों?" इस बार नौजवान ने पूछा, "यह मानसिक उद्वेग के सागर में गहरे स्नान करने जैसा ही लगता है न?"

स्त्री ने अपनी धुंधली-धुंधली आंखें उसकी ओर घुमायीं, "अब क्या यह इसे खा जायेगा?" उसने सवाल किया.

"बिल्कुल खायेगा. केवल खिलवाड़ के लिए तो इसने इसे नहीं मारा. मारा इसलिए है कि भूखा था." स्त्री के मुंह के सिरों पर फिर हल्की-सी ऐंठन आयी. वह फिर सांप को देखने लगी, "मैं इसे खाते हुए देखना चाहती हूं."

▣

सांप फिर अपना कोना छोड़कर बाहर निकल आया. अब उसकी गर्दन में वह हमला करने वाली मरोड़न नहीं थी. लेकिन वह जैसे फूंक-फूंक कर उधर सरक रहा था—मान लो अगर चूहा हमला कर भी दे तो वह उछल कर पीछे आ जाये. अपनी भोंथरी नाक से उसने चूहे को कोंचा और फिर पीछे सिमट आया. उसे संतोष हो गया कि चूहा मर गया है. फिर सिर से लेकर पूंछ तक सांप ने उसके शरीर को अपनी ठोड़ी से सहलाया. लगा जैसे वह शरीर का जायज़ा लेता हुआ प्यार से उसे चूम रहा हो. आखिरकार उसने अपना मुंह खोला और अपने जबड़ों के सिरों पर जीभ फिरायी.

डॉ. फिलिप्स अपनी सारी इच्छा-शक्ति लगा कर उस स्त्री की ओर जाने से अपने ध्यान को रोके था. उसने मन ही मन कहा: 'अगर यह भी अपना मुंह खोले होगी तो मेरा भी दिमाग खराब हो जायेगा. मुझे डर लगने लगेगा.' अपनी निगाहें उधर से हटाये रखने में उसे कैसे सफलता मिली, यह वही जानता था.

सांप ने अपना जबड़ा चूहे के सिर पर अड़ाया और रुक-रुककर धीरे-धीरे लकवे के झटकों की तरह चूहे को निगलने लगा. जबड़े फंसे तो सारा गला आगे सिमट आया. जबड़ों ने फिर दुबारा अपनी पकड़ ठीक की.

घूमकर डॉक्टर फिलिप्स अपनी काम करने की मेज़ पर लौट आया. तलखी से बोला, "आपके कारण मेरी प्रक्रिया-माला की एक कड़ी यों ही निकल गयी न? अब यह सारा सैट कभी पूरा नहीं होगा." एक परीक्षण गिलास को उसने कम-शक्ति वाले अण्वीक्षण-यंत्र के नीचे रख कर उसे देखा. फिर झल्ला कर उसने सारी तश्तरियों के पदार्थ को बर्तन धोने की नांद में उलट दिया. लहरें अब कम हो गयी थीं, इसलिए अब फर्श के पार से सीला-सीला भभका ही आ पा रहा था. नौजवान डॉक्टर ने अपने पांवों के पास ही एक कमानी वाले दरवाज़े का पल्ला उठाया और सारी तारक-मछलियां नीचे समुद्र के काले-काले पानी में उलट दीं. पालने की सूली पर बढ़ी रोशनी में उपहास से मुंह बिराती सी चमकाती हुई बिल्ली के पास आकर वह कुछ देर रुका. नली द्वारा प्रविष्ट होने वाले द्रव के कारण उसका शरीर फूलकर कुप्पा हो गया था. उसने नलकी बंद की, सुई निकाली और नस को कसकर बांध दिया.

"आप थोड़ी-सी कॉफी पियेंगी क्या?" उसने पूछा.

"नहीं धन्यवाद! मुझे अभी जल्दी ही चले जाना है."

सांप के पिंजरे के पास वह खड़ी थी. डॉक्टर उसके पास आ गया. चूहा निगला जा चुका था—बस, सांप के मुंह के बाहर उसकी एक इंच लाल-लाल पूंछ इस तरह निकली हुई थी मानो किसी को चिढ़ाने को जीभ निकाल रखी हो. गले ने फिर भीतर की तरफ सांस खींची और पूंछ भी गायब हो गयी. जबड़े अपने अपने खानों में सटकर बैठ गये और वह बड़ा सांप अलसाया-सा रेंग कर कोने में आ गया. बड़ा-सा चार का अंक बनाया और उस पर अपना सिर डालकर सो गया.

"इसे तो अब नींद आ गयी," स्त्री ने कहा, "अब मैं जा रही हूं. लेकिन मैं थोड़े-थोड़े समय बाद आकर अपने सांप को खाना खिलाया करूंगी. चूहों के पैसे दे दूंगी, लेकिन इसे जी-भरकर खिलाना चाहती हूं और फिर किसी समय अपने साथ ले जाऊंगी." एक क्षण को अपने धूसर-धूमिल सपनों से उसकी आंखें पार निकल आयीं, "याद रखिये, यह मेरा है. इसका ज़हर मत निकालिये. मेरी इच्छा है. ज़हर इसमें ही रहे. अच्छा नमस्कार." तेज़ी से वह दरवाज़े की तरफ बढ़ी और बाहर चली गयी. डॉक्टर ने उसके जाते कदमों की आवाज़ को सीढ़ियों पर सुना, लेकिन फिर नीचे के फर्श पर उसके चलने की आवाज़ सुनाई नहीं दी.

डॉ. फिलिप्स ने घुमाकर एक कुर्सी अपनी ओर की और सांप के पिंजरे के सामने ही बैठ गया. उस निश्चल सांप की ओर निगाहें टिकाये हुए वह अपने विचारों की गुत्थी सुलझाने की कोशिश करता रहा. मन ही मन बोला—'मनोवैज्ञानिक यौन प्रतीकों के बारे में मैंने इतना कुछ पढ़ा है; लेकिन वह सब इसे समझने में मदद करता नहीं लगता. शायद मैं सबसे बहुत ज़्यादा अलग पड गया हूं. हो सकता है मैं इस सांप को मार डालूं. काश मैं जान पाता! लेकिन इस सबको जानने के लिए मैं प्रार्थना करने किसी भगवान के पास नहीं जाऊंगा.'

हफ्तों वह उसके लौटने की राह देखता रहा. उसने निश्चय किया, "इस बार जब वह आयेगी तो मैं उसे अकेला छोड़ बाहर चला जाऊंगा. उस कंबख्त को दुबारा देखूंगा ही नहीं."

मगर वह फिर कभी वापस नहीं आयी. वह अब भी बस्ती में बाहर घूमने जाता तो महीनों उसे तलाश करता. कई बार किसी भी लंबी-सी स्त्री को वही समझकर उसके पीछे हो लेता लेकिन वह स्त्री उसे फिर कभी दिखाई नहीं दी.

(अनुवाद : राजेंद्र याद[व])

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथाएं

शिकार

अंजुम अब्बासी

जहाज बंदरगाह से लग चुका था. उसने बड़े ध्यान से देखा, परंतु कस्टम का वह जाना-पहचाना पहरेदार कहीं दिखायी नहीं दिया. वह चिंतित था कि अब विदेशी शराब की उन बोतलों का क्या करे? कस्टम के सिपाहियों को 'दक्षिणा' देना तो एक दस्तूर बन गया है और वह भी उस दस्तूर का पालन करता रहा है, परंतु जब वह परिचित सिपाही नहीं दिखा तो उसकी परेशानी बढ़ गयी. वह ड्यूटी देने वाले उस अजनबी के समीप पहुंचा तो झट से कहा, "देखिये! मैं कल ठीक इसी समय शराब की कुछ बोतलें बाहर ले जाऊंगा. कल आप ड्यूटी पर रहेंगे तो मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी. आपका हक आपको मिल जायेगा, आप निश्चिंत रहें."

उस पहरेदार को यह बात पसंद नहीं आयी. वह क्रोध से दहाड़ा, "मैं हर्गिज इसकी अनुमति नहीं दूंगा बल्कि तुम्हें गिरफ्तार. . . . . !" पहरेदार अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि सी-मैन वहां से चलता बना.

दूसरे दिन वह पहरेदार उस आदमी की ताक में रहा. जैसे ही वह गेट के पास पहुंचा, पहरेदार बिना देर किये उसकी तलाशी लेने लगा. जब कुछ न मिला तो पहरेदार क्रोध से भर गया.

"कहां हैं वह बोतलें?"

"कौन-सी बोतलें?"

"जिनके बारे में कल तुमने कहा था."

"बोतलें? . . . . . वे बोतलें तो मैं कल ही ले गया था." उस आदमी ने बड़ी गंभीरता से कहा.

पहरेदार मुंह ताकता रह गया. □

अनु.: तनवीर अख़तर 'रूमानी'

सन्नाटा

वलवीर त्यागी

"कौन?"

"मैं हूं."

"घोर अंधेरे में क्या कर रही हो?"

"खड़ी हूं."

"सो तो मैं भी देख रहा हूं."

चुप्पी.

मैं जेब से डिब्बी और माचिस निकालता हूं. उसकी आतंकित-सी आवाज़ सन्नाटा चीरती है, "ठहरो. माचिस न जलाना."

"क्यों?"

"मुझे उजाले से भय लगता है."

"हो-हो. उजाले से भय!" मेरे हंसने से सन्नाटा थर्रा जाता है.

"हां, उजाले मुझे छलते जो हैं."

"और अंधेरे?"

"रास आ गये हैं."

"अजीब बात है!"

"उजाले में रहने वालों को अंधेरे में पलते लोग अजीब ही लगा करते हैं."

"क्या मतलब?"

"मतलब! तुम उजाले वाले सिर्फ ठगना जानते हो."

"और अंधेरे वाले?"

"बीमार मां की दवाओं के लिए पैसे देते हैं. मेरी कॉलेज की फीस जुटाते हैं. मेरे छोटे भाई-बहनों का पेट भरते हैं."

"शाबाश! साहसी जान पड़ती हो."

"धन्यवाद! ठोकरें खा-खाकर आदमी में साहस आ ही जाता है."

"मैंने तुम्हारी आवाज़ पहचान ली है."

"सिगरेट जला सकते हो."

"आवश्यकता नहीं."

"फिर किस चीज़ की आवश्यकता है?"

"तुम्हारी."

"क्या करोगे?"

"खरीदार से यह नहीं पूछा जाता."

"तो तुम भी. . . . ."

"गलत, बिल्कुल गलत."

"सही क्या है?"

"सिर्फ तुम्हारी आवश्यकता है."

"मैं दिन में कॉलेज जाती हूं और घर संभालती हूं."

"तो फिर रात सही."

"मंजूर है."

"क्या लोगी?"

"जो दोगे."

"जानती हो, मैं तुम्हारा क्या करूंगा?"

"बिकने वाली चीज़ से यह नहीं पूछा जाता!" उसने विद्रूपता से हंसकर मेरे पहले के शब्द मुझे लौटाये. मैं झेंप गया.

फिर चुप्पी. इस बार मेरी.

"क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं."

"सफेद झूठ. मैं मूड पहचानती हूं."

मैं सिटपिटा गया. वह मुस्करा पड़ी.

"सोचता हूं कि. . . . ."

"न ले जाऊं. बदनामी होगी." उसने पूरा किया. उसका कंठ भर आया. "आज तुम्हारे सिवा कोई नहीं मिला. घर में मां की दवा के लिए पैसे नहीं. . . ."

"मैं दे सकता हूं."

"भीख नहीं चाहिए."

"मेरे पास फालतू पैसे नहीं. काम लूंगा."

"कर लो न अपना काम."

"फिर तुमने गलत समझा."

"गलत समझते-समझते आदत जो पड़ गयी है. अब तुम ही बताओ सही क्या है?"

"मैं तुम्हारी तस्वीर बनाऊंगा. मुझे अपनी पेंटिंग के लिए तुम जैसी लड़की की ज़रूरत है. आओ."

और वह मेरे साथ चल दी. पीछे अंधकार में डूबा पार्क निर्जीव पड़ा था. सिर्फ सन्नाटा घुप्प रहा था. □

बदबू

सुरेश के. अंजुम

गौतम ने आंखें खोलीं.

सुजाता ने पात्र आगे सरकाया, "प्रभु ग्रहण करें!"

गौतम ने कटोरा मुंह तक लाकर झटके से दूर कर दिया, "बदबू आ रही है सुजाता."

"क्या करूं, प्रभु," सुजाता कातर स्वर में बोली, "राशन के चावल हैं!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवामुक्ति

वल्लभ डोभाल

मंत्रिमंडल के बर्खास्त किये जाने की खबर सारे राज्य में फैल रही थी. मंत्रिमंडल भंग चाहे न होता, लेकिन यह खबर अपने आप में सनसनीखेज़ तो थी ही. पत्रकारों का कहना था कि मंत्रिमंडल भंग न भी हो, पर छटनी अवश्य हो रहेगी. सरकारी खर्चा मंत्रियों की संख्या कम करने से ही कम होगा. इस बात पर ज़ोर दिया जा रहा था कि एस्टेट का खर्च कम होना चाहिए, ताकि अर्थ-व्यवस्था एक जगह स्थिर रह सके.

मंत्री लोगों के भाषणों में यही बात सब जगह सुनने में आती कि जनता ही अपनी ज़रूरतों को बढ़ावा देकर देश की अर्थ-व्यवस्था को अस्थिर किये दे रही है, इसलिए जनता को चाहिए कि वह फिज़ूल-खर्ची को कम करे. इसी में सब का कल्याण है. लेकिन जनता की आवाज़ थी कि हमें मिलता ही क्या है? सरकारी कर्मचारियों को वेतन मंहगाई-भत्ता कुल मिलाकर जो मिलता है, उसमें गुज़ारा नहीं होता. इन सब बातों को देखते हुए फिलहाल यही ठीक माना गया कि अब जहां यह अर्थतंत्र टिक गया है , वहीं टिका रहे, बाद में देखा जायेगा.

लेकिन छटनी तो होकर रहेगी. इतने बड़े मंत्रिमंडल को बनाये रखने की आवश्यकता नहीं है. इसे कम करना होगा. सुना है मुख्यमंत्री कुछ मंत्रियों को स्वतंत्र कर देंगे. उन्हें मंत्रिमंडल से हटाना होगा, तभी स्थिति पर काबू पाया जा सकता है.

इसी विषय को लेकर कई दिनों से चर्चा चल रही थी. आदमी अपने समय से हटे तो बात समझ में आती है. जबर्दस्ती हटा देने का नाम तो स्वतंत्र करना नहीं होता. ऐसी स्वतंत्रता जब मिल रही हो तो आदमी का सुख-चैन डूब जाता है, सोचकर मंत्री लोगों की भूख-प्यास जाती रही. न जाने कहां यह बिजली गिरे! छटनी होने का समाचार सबको मार गया है. समझ में नहीं आता कि एकाएक क्या होने जा रहा है!

कुछ दिनों तक यह समाचार यथावत् बना रहा. न किसी पत्रकार ने इस समाचार का खंडन किया, न मुख्यमंत्री ने ही

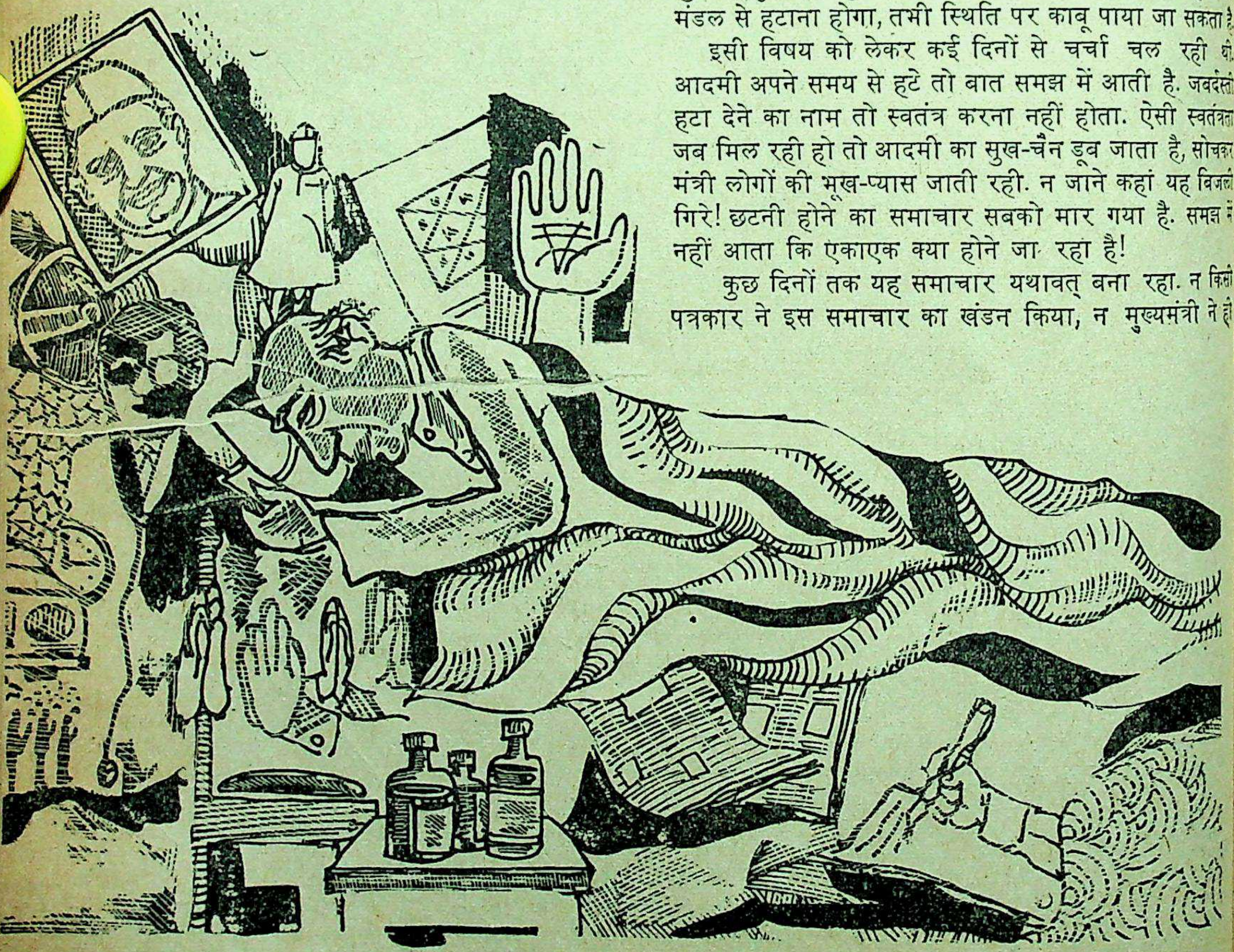

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संबंध में कोई बयान जारी किया. सब जानते हैं कि राजनीतिक घटनाओं और वक्तव्य आदि के प्रभावहीन और असत्य हो जाने में ज्यादा समय नहीं लगता. ईंट के ऊपर ईंट को जमाने वाली बात है. एक बयान के बाद तुरंत दूसरा बयान जारी कर दिया तो पिछले बयानी कागज़ों पर बाबू लोग अपना लंच बांट लेते हैं. कुर्सी, मेज अथवा फर्श पर गिरी हुई सब्ज़ी को इन्हीं बयानी कागज़ों से साफ किया जाता है. एक क्षण जिस चीज़ की कीमत है, दूसरे ही क्षण वह कितनी बेकार साबित हो जाती है. मंत्री लोगों को लगता है कि उनका जीवन भी उस बयानी कागज़ की तरह है जिससे किसी भी वक्त धब्बों को पोंछने का काम लिया जा सकता है. मन को कुंद कर देने वाली ये बातें हैं. इसी मनःस्थिति में समय निकला जा रहा है. मुख्यमंत्री द्वारा इस विषय में कुछ भी स्पष्ट नहीं किया गया. संदेह में डूबे मन की स्थिति को कौन जानता है! कौन कह सकता है कि मुख्यमंत्री के भीतर क्या भरा है! किसी की हिम्मत नहीं कि खुलकर पूछ ले. ऐसी स्थिति में बातों द्वारा कुरेदते रहने की इच्छा होती है. शायद बातों-बातों में कोई बात सामने आ जाये. बातों के ज़रिये दूसरों को तसल्ली देना आसान है. लेकिन स्वयं को संतुष्ट रख पाना सहज नहीं. इस मामले में मुख्यमंत्री ही स्पष्ट करें तो बात समझ में आये.

▣

सभी को मालूम है कि मुख्यमंत्री उन लोगों से असंतुष्ट हैं जो राज्य में अपनी मनमानी चलाते हैं और ऊपर से आये फैसलों की उपेक्षा करते हैं. नाराज़गी की बात मुख्यमंत्री के चेहरे पर स्पष्ट है कि वे आजकल कितने सख्त बने हैं. बात-बात में सख्ती... न जाने यह सख्ती क्या कर बैठे!

मंत्रियों की आंखें इन दिनों बुझे बल्ब कि तरह लगती हैं. चेहरों पर हल्कापन दिखाई देता है. जैसे ये चेहरे किसी को दिखाने के काबिल नहीं हैं. बुने हुए चेहरों के बीच से जब आदमी का असली चेहरा झांकता है, तो उसे कहीं छिपाने के अलावा कोई चारा नहीं. इन दिनों राजधानी में न रहकर मंत्रीगण अपने चुनाव-क्षेत्रों के दौरे पर निकल गये हैं. उद्घाटन-भाषण और जलजलों का जायज़ा लेने की खबर अखबारों में छपवाकर ये लोग राजधानी से लुप्तप्रायः हो गये हैं. सुना है कि मुख्यमंत्री का दौरा अपने क्षेत्र में करवाकर वे दिखा देंगे कि उनके क्षेत्र में कैसी खुशहाली है!

मंदिरों के बाहर, तीर्थयात्रा जाने वाली सड़कों, ज्योतिषी और दैवज्ञों के आसपास किसी न किसी मंत्री की कार खड़ी दिखाई देती है. ज्योतिषियों का फलादेश बताता है कि मारकेश टल गया है लेकिन अरिष्ट अभी खंडित नहीं हुआ. मित्र स्थान पर शनि की वक्रदृष्टि है जिसके कारण संत्रास बना रहेगा. भक्त-जनों की राय है कि प्रभुस्मरण सब तरह के संत्रासों से मुक्ति दिलाने वाला है. वही दुख-द्वंद्व का टालनहार है.

यही सत्य है. उस प्रभु की कृपा जिस पर होती है, वही समर्थ बनता है. उसकी कृपा से अब तक कई पंगु गिरियों को लांघ चुके हैं और कई ऊंची चोटियों पर विराजमान बैठे हैं. धन्य है उस प्रभु की शक्ति... उसका विधान.. कहते हैं कि विधि का विधान ही प्रबल है. उसका विधान अपने विधान की तरह बदलने वाला नहीं कि आज जो आदमी चोटी पर बैठा है, उसे अकारण पंगु बनाकर चोटी से नीचे लुढ़का दे.

कहते हैं कि दुविधा में पड़े मन और सर्प वाले घर में वास करने वाले प्राणी की अकाल-मृत्यु में शंका नहीं करनी चाहिए. कौन जानता है कब क्या हो! लेकिन कभी-कभी इन लोगों की बातें भी पीछे रह जाती हैं. एक बार इन लोगों ने अष्टग्रही योग बनाकर समूची जनता को भयाक्रांत कर दिया था. तब अष्टग्रही योग जनता के ऊपर बनता था. लेकिन यह जनता का योग नहीं. मुख्यमंत्री महोदय ने अष्टग्रही से भी ज्यादा कुछ सोच लिया है. अब की बार जब मंत्रिमंडल पर अष्टग्रही योग आया तो जाने कितनों का मारकेश बनता है!

▣

पत्रकार लोग चुप साधे हैं. ये लोग भी हवा का रुख देखते हैं. हवा बांधने वाले लोग...! मंत्री, नेता या कोई बड़ा अधिकारी बीमार पड़ जाये तो इनके लिए मैटर तैयार हो जाता है. उसके मरने की सूचना पहले से कंपोज करवाकर रख लेते हैं, ताकि मौके से सुर्खी देकर उसे पेश किया जाये. आदमी मौत से लड़ रहा है और ये लोग मौके की तलाश में रहते हैं. अगर इतना भी चूक गये तो पत्रकारिता का क्या अर्थ रह जाता है! मंत्रिमंडल के टूटने की अफवाह के कारण सारा कुछ अस्त-व्यस्त है. अगले दिन खबर मिली कि एक मंत्री को हार्ट-अटैक हो गया है. तुरंत एक सरकारी अस्पताल में उनके भर्ती किये जाने की खबर भी निकल आयी. अखबारों में खबर छपी तो प्रदेश के लोगों की भीड़ अस्पताल में जमा होने लगी. छोटे-बड़े सभी तरह के चेहरों पर चिंता के भाव उमड़ आये. हमारे मंत्रीजी... हमारे क्षेत्र के.. हमारे गांव-कस्बे के... हमारी बिरादरी के.. पास-पड़ोस के घर के..! नाते-रिश्तों के साथ जनता की सहानुभूति, लोकप्रियता और आदर-भाव को देखते हुए काफी कुछ पता चलता है. इस सामाजिक संपत्ति की कोई सीमा नहीं. देखने की बात यह कि उनकी बीमारी से जनता में क्या प्रतिक्रिया बनी है! जितना अधिक कष्ट जनगण में जागृत हो, वह जगना चाहिए. कष्ट ही आदमी को कुछ देता है. वही पंगु बनने से रोकता है. फिर मिलन की सबसे पवित्र कसौटी वही है. इस कसौटी पर एक अपंग-अपाहिज भी मंत्रीजी से अपनी बात कह जाता है. अब तक भाषण-मीटिंग में दूर से ही मंत्रीजी को देखा जाता रहा है. पास आने का अवसर नहीं मिला. आम आदमी को पास आने का अवसर तभी मिलता है, जब इस तरह की कोई घटना घट जाये. कोढ़-खाज या कुंद कर देने वाली कोई बीमारी तन को जकड़ ले.

▣

दो दिन तक मंत्रीजी की हालत गंभीर रही. अस्पताल के स्पेशल वार्ड में रिहायशी आवास उन्हें सुलभ था. तीमारदारों की सुविधा के साथ ऐसी जगह मिली थी जहां जनता-जनार्दन के दर्शन सहज प्राप्त न हों. बड़े आदमी का बड़ा दुख! आदमी अपने दुख से पस्त है और यह जनता स्साली.. दर्शन पाना चाहती है. जब-तब लोगों को अपने करीब पाकर मंत्रीजी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबराहट बढ़ जाती है. पुराने चेहरे बार-बार सामने आते हैं. लेकिन देर के बाद ही कोई चेहरा पकड़ में आता है और तब मंत्रीजी मन ही मन सोचते हैं, 'हां, यही वह आदमी है जो लगातार ढाई वर्ष तक उनके पीछे फिरता रहा है. लेकिन इसे लाइसेंस नहीं दिलाया जा सका. अमुक आदमी ने राज्य के शिक्षा-संस्थानों में कितने ही कार्यक्रम दिये, लेकिन सरकार से उसकी कोई सहायता मैं न करवा सका. अपने राज्य में लघु-उद्योग चलाने के लिए फलां आदमी ने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया. उसे विश्वास था कि मैं राज्य-सरकार से उसकी सिफारिश कर दूंगा, लेकिन ......!' कितने लोगों को बेकार और निराश होते मंत्रीजी ने अपनी आंखों से देखा है. मंत्रीजी को लगता है कि यह सब कुछ उन्हीं के कारण हुआ है. उनके आश्वासन लोगों को मार गये हैं. आज भी जब उन चेहरों को वे आस-पास मंडराते हुए देखते हैं तो अपने आप आंखें मुंद जाती हैं. मंत्रीजी इन चेहरों को देखना नहीं चाहते. ये लोग सामने से हट जायें तो अच्छा हो. उनके सामने होते हुए दिल ठिकाने नहीं रहता. दर्द से मन टीस उठता है. मंत्रीजी की दर्द भरी आह कमरे में गूंजती है तो लोगों को वहां से हटाकर डॉक्टरों की भीड़ जमा हो जाती है. अगले दिन अखबार की सुर्खी और गाढ़ी दिखाई देती है. अखबारी भाषा में 'कॉमा' लग जाने की खबर से मंत्रीजी के विभाग में हलचल मच आयी है. कॉमा के बाद दूसरी स्टेज फुलस्टॉप की है. विभाग के कर्मचारियों को शंका है, कहीं मंत्री महोदय को फुलस्टॉप न लग जाये.

बीमार को जब कभी राहत मिलती है तो वह गंभीर दृष्टि से सिरहाने पर रखी छोटी आलमारी और मेज़ की ओर देखता है. दवा की शीशियों के पीछे दीवार से सटा मुख्यमंत्री का एक बड़ा-सा चित्र देखकर मन को राहत पहुंचती है. मंत्रीजी इस चित्र को अपने साथ ले आये थे. मुख्यमंत्री अपनी स्वाभाविक मुद्रा में भले लगते हैं. तस्वीर के आगे पीतल की एक मूर्ति चमकती दिखाई देती है. किसी पहाड़ी देवता की मूर्ति है. आंखें जब-जब इस मूर्ति को देखती हैं. जब कभी मायूसी का दौर पड़ता है तो मंत्रीजी समूचे उस ओर केंद्रित हो जाते हैं. नज़रें मानो निवेदन करती हुई कह रही हों, 'हे कृपानिधान! तू अनादि है, तेरा कोई अंत भी नहीं. तू चाहे तो विष को अमृत में बदल दे. हे महाप्रभु! तू देख ही रहा है कि किस हीन मनःस्थिति के गर्त में यह मन डूबता चला जा रहा है. मेरा तुझसे कुछ भी छिपा नहीं है भगवन्. इस अवस्था में अब कहीं आ-जा भी नहीं सकता. सुना है दूसरे साथी लोग अपने प्रयत्नों में लगे हैं. जोड़-तोड़ की दुनिया है. लेकिन अपने पास ऐसा कोई ज़रिया नहीं. मेरे लिए अब यही एक जगह है जहां आसानी से आना-जाना हो सकता है.' कहते हुए कभी मन की घबराहट तेज़ हो जाती है और मंत्रीजी बेहोशी की हालत में डूबते लगते हैं. डॉक्टर लोग यों मौत को ज़िंदगी में बदलने की कोशिश करते हैं, पर सच्चाई से वे भी अपरिचित नहीं कि ज़िंदगी और मौत पर किसी का दावा नहीं. ऐसे मौके पर ये लोग भी हाथ बांधकर खड़े रह जाते हैं. भगवान पर भरोसा करने की सलाह देते हैं. सब कुछ भरोसा रखने से ही होगा. ज़िंदगी और मौत जिसके हाथ है, उस पर भरोसा रखना ज़रूरी है. मंत्रीजी को भरोसा है. उनका विश्वास है कि इस समय मुख्यमंत्री ही उन्हें जीवन दे सकते हैं. इस भरोसे में जब-जब कमी आती है, तब उनकी हालत ज़्यादा बिगड़ जाती है. वे मारे दर्द के चिल्ला उठते हैं.

डॉक्टरों की समझ में नहीं आता कि दर्द कहां से शुरू होता है. कई एक्सरे खिंच गये हैं. सारे शरीर का मुआइना हो चुका है. लेकिन दर्द है कि पकड़ में नहीं आता. मंत्रीजी के कॉमा लगने की सुर्खी अखबारों से हटती नहीं. इस बार विभाग के अधिकारियों द्वारा मुख्यमंत्री को संदेश पहुंचाया गया. अगले दिन तड़के पुलिस की कतार अस्पताल के बाहर खड़ी दिखाई दी. आसपास गुजरने वाली सड़कों पर पानी का छिड़काव दिखाई दिया. अस्पताल के बरामदों में पड़ी फालतू आलमारियों को वहां से हटा दिया गया. डॉक्टर, नर्स और दूसरे सुस्ती छोड़ चुस्त हो गये.

मुस्कराते चुस्त चेहरों के बीच मुख्यमंत्री की कार आ पहुंची. सीनियर डॉक्टर और मेडिकल सुपरिंटेंडेंट ने दरवाज़ा खोला.

"पेशेंट कैसा है?" उतरते ही मुख्यमंत्री ने प्रश्न किया. प्रश्न का कोई उत्तर न देकर लोग मौन रह गये. मुख्यमंत्री को उनका मौन खटका. शायद फुलस्टॉप लग गया है. अपने आस-पास खड़ी जनता की ओर एक सरकारी मुस्कराहट छोड़ते हुए मुख्यमंत्री दो कदम बढ़े कि डॉक्टरों ने आगे बढ़कर उन्हें स्पेशल वार्ड तक पहुंचा दिया. कमरे में इन लोगों के आने की आहट पा मंत्रीजी ने बोझिल पलकों को धीरे-धीरे उठाया. वे एकाएक चारपाई से उठने को हुए कि डॉक्टर ने उन्हें रोक लिया. मुख्यमंत्री को अपने पास खड़ा देखकर मंत्रीजी की आंखों में आंसू छलक आये. मुख्यमंत्री कुछ पूछने वाले थे कि एकाएक रोगी के सिरहाने अपनी तस्वीर स्पष्ट दिखाई दी. देखकर कुछ कहते न बना. हृदय से निकली एक गंभीर मुस्कान होंठों को छूती हुई आंखों में जा बसी. अगले दिन यही मुस्कान उनकी वाणी से अमृत बनकर टपक पड़ी. मंत्रीजी की ओर मुखातिब हो बोले, "चिंता करने की बात नहीं, मुझ पर भरोसा रखिये, सब ठीक हो जायेगा."

मंत्रीजी ने मूर्ति की ओर दोनों हाथ उठा लिये. बोले, "प्रभु की इच्छा बलवान है, उसे जो मंजूर होगा वही...."

रोगी के साथ इतनी ही बातचीत बहुत है. अगले ही क्षण वापस लौट गये. लेकिन डॉक्टरों को मुख्यमंत्री की अनाधिकृत वाणी अखरने लगी. जिस आदमी को अगले कुछ घंटों में मृतक घोषित किये जाने का इंतज़ार था, उसके बारे में ठीक हो जाने की घोषणा उन्हें बेहूदी लगने लगी. बेचारे डॉक्टरों को क्या मालूम की राजनीति के कीटाणु कितने प्रकार से रोगों को जन्म दे रहे हैं. जिन रोगों का इलाज ये लोग अब तक करते आये हैं, वे आज कितने पुराने पड़ गये हैं. पलटकर डॉक्टर जब मंत्रीजी के कमरे में पहुंचे तो देखा कि उनकी आंखों से रोग-मुक्ति छलक रही है. जीवन-जल उन बड़ी-बड़ी आंखों में भरपूर लौट आया है. देखकर डॉक्टरों ने 'रोगमुक्ति' का प्रमाण-पत्र तैयार किया और मंत्रीजी के आगे रख दिया. □

● 636, अलीगंज, लोदी कालोनी, नयी दिल्ली-3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

छत कहीं होती सर छुपाने को,
तो कभी हम भी घर गये होते !
—अवधनारायण मुद्गल

□ रघु राय
ाई.ई.एन.एस.
वन,
फी मार्ग,
यी दिल्ली-1

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्त कटे रिश्ते

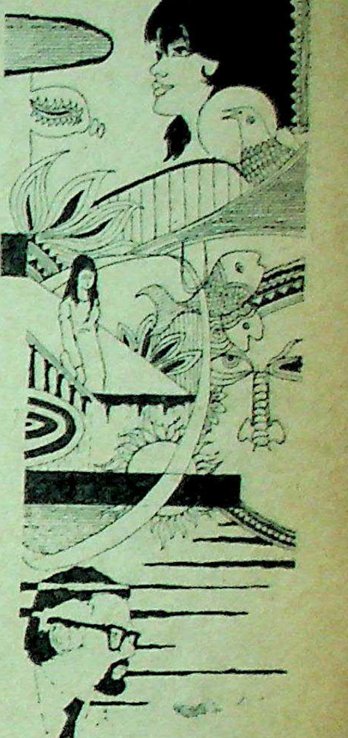

▣ सूर्यकुमार जोशी

शव-यात्रा एक गली से श्मशान-घाट की ओर बढ़ रही थी. सहसा एक दुमंजिले मकान की ऊपरी खिड़की खुली. एक युवा स्त्री ने झांका. उसके काले, लंबे केश खुले थे, गीले थे. शायद वह तभी नहाकर आयी थी. स्त्री ने श्रद्धापूर्वक सिर झुका शव को प्रणाम किया.

लड़का खड़ा एकटक उसे देखता रहा. शव-यात्रा कुछ आगे बढ़ गयी. स्त्री ने उस आठ-नौ बरस के लड़के को अकेला खड़ा देखा. एक क्षण के लिए दोनों की निगाहें मिलीं. स्त्री ने मुस्कराते हुए खिड़की बंद कर ली.

श्मशान के एक कोने में कुछ शव-यात्री बैठे थे. लड़का भी उनमें था. अपने पिता की जलती चिता को देख उसने पूछा, "वह औरत कौन थी जिसने बाबूजी को हाथ जोड़े थे?"

आसपास के लोग एक दूसरे को देखते हुए मुस्काये.

"उसने हाथ क्यों जोड़े थे?"

वे लोग सामने गंगा के चौड़े पाट को देखने लगे. दूर एक स्टीमर जा रहा था.

लड़का उस स्त्री की मुस्कान को नहीं भूल सका.

बहुत वर्ष बाद जाकर उसने जाना कि वह स्त्री एक वेश्या थी.

और भी बहुत वर्ष बाद उसने जाना कि एक अनजान आदमी की लाश को देख जब लोग हाथ जोड़ते हैं तो वे ईश्वर का आभार मानते हैं, वे स्वयं जीवित हैं.

लड़का पूरा मर्द होने पर भी उस स्त्री की मुस्कान को नहीं भुला सका. वह उसे सपनों में दिखायी देती थी.

▣

कई वर्षों बाद एक शाम वह उस गली में पहुंचा, ठीक उसी मकान के सामने. खुली खिड़की से हारमोनियम और तबले के स्वर के साथ एक स्त्री का गाना सुनाई दे रहा था.

वह ऊपर चला आया. उसे देख गाना बंद हो गया. गाने वाली तेरह-चौदह वर्ष की एक लड़की थी, तबलची अधेड़, हारमोनियम-मास्टर बूढ़ा. एक साथ तीन पीढ़ियां!

अब वह कहां होगी, कैसी होगी, किस पीढ़ी की होगी? नवागंतुक सोच रहा था.

"यहां मालकिन कौन है?" उसने सख्त आवाज़ में पूछा.

लड़की लड़खड़ाती उठी, गिरती-पड़ती दूसरे कमरे में चली गयी. तबलची खरामां-खरामां जूतियां पहन बाहर चला गया. बूढ़ा हारमोनियम-मास्टर मुस्कराया.

कमरे की एक-एक चीज़ वह देख रहा था. क्या बाइस साल पहले भी यह कमरा ऐसा ही होगा?

▣

वह आयी. सिर के सफेद बालों में लापरवाही से लगाया गया खिजाब, बुझी-बुझी-सी आंखों के कोरों पर फैला हुआ काजल, पान से रंगे होंठ.

"बाइस साल पहले तुम्हारे घर के सामने से एक मुर्दा निकला था. तुमने खिड़की खोलकर उसे प्रणाम किया था. याद है?"

"इस गली से हर रोज़ मुर्दे निकलते हैं. नीमतल्ला घाट जाने का यह भी एक रास्ता है न!"

"नीमतल्ला घाट जाने के रास्ते तो और भी बहुत से हैं," पुरुष ने एक अर्थपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा, "शायद यह सबसे छोटे रास्तों में हो . . .! लेकिन उस सुबह एक खास बात थी. मुर्दे को मरघट ले जाने वालों में आठ-नौ बरस का एक लड़का भी था. वह तुम्हें देखता रहा था. तुमने भी उसे देखा था और मुस्कराकर खिड़की बंद कर ली थी. याद आता है कुछ?"

स्त्री की बुझी आंखों में धीरे-धीरे एक चमक आ गयी. उसके होंठों के कोनों पर एक मुस्कान खिल उठी, ठीक वैसी ही.

"हां, याद है," वह बोली.

"याद है?" पुरुष ने आश्चर्य से पूछा.

"हां, उस लड़के को कभी न भूलूंगी. उसे सपनों में भी देखा है! कितना निश्छल सुंदर, बिल्कुल एक देवदूत सा-लगा था वह मुझे."

"हां! वह लड़का भी तुम्हारी उस मुस्कान को कभी नहीं भूल पाया," पुरुष बोला, "उसे भी तुम तब बड़ी सुंदर लगी थीं, सती-साध्वी-सी, साक्षात सरस्वती-सी!"

पुरुष उठ खड़ा हुआ. वह अपनी जेब से रुपये निकालने लगा.

"नहीं नहीं," वह बोली, "सती-साध्वी को इस तरह रुपया नहीं देते." वह मुस्करा रही थी. उसकी आंखें डबडबायी हुई थीं.

"शायद तुम ठीक कह रही हो," पुरुष ने भी मुस्कराते हुए कहा, "देवदूत अपनी जेब में रुपये लेकर नहीं चलते." उसे मालूम न था, आंखें उसकी भी डबडबा आयी थीं. □

● 4 ए, कमलानगर, दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बागी का आत्म-मंथन : समापन किस्त

...ताकि सनद रहे...

• रामकुमार भ्रमर

अब तक आप पढ़ चुके हैं...

डाकू मलखानसिंह की बेटी की सगाई बिरज के बेटे से तय हो चुकी थी. शादी होने वाली थी, पर बिरादरी के डर से बिरज ने यह रिश्ता तोड़ दिया. इस पर अपमान की ज्वाला में धधकता मलखान बिरज की हत्या करने जा पहुंचा, किंतु बालसखा बिरज की बेटी की दुहाई ने उसका अंतस झकझोर डाला और वह विवश-सा बैरंग लौट आया. परंतु मन में रह गयी इस कसक ने उसे चैन से नहीं बैठने दिया. यहां तक कि वह अपने विश्वस्त सहयोगी बिंदा पर भी शक करने लगा और कुमुक तथा रसद मुहैया करने वाले व्यापारी कासीराम के कहने पर किये जाने वाले कामों से भी उसे नफरत होती गयी. अपने प्रति धिक्कार और कुकृत्यों के प्रति अनच्छिा में मार-काट करते चले जाने के बावजूद एक दिन पुलिस भिड़ंत में उसने बिंदा को खुद ही गोली मार दी. उसने अच्छा किया या बुरा . . . सोचते हुए उसे एक सिपाही रामलहरी की याद आयी और उसके मन में सवाल उठा––क्या सिर्फ गोली किसी को मार सकती है?....और वह बिंदा के परिवार की खोज-खबर लेने उसके घर जा पहुंचा, जहां बिंदा की मां थी और थी नयी-नकोर घरवाली! . . . . वहीं उसे पता लगा कि पास के गांव का जहारसिंह पुनिया को आतंक के बल पर अपने घर बिठा लेना चाहता है. उसे लगा आत्मधिक्कार से मुक्ति पाने का एक यही अवसर है, वह पुनिया को जहारसिंह से बचा ले! शुरू में उसने जहारसिंह पर अपना नाम जाहिर नहीं किया और उसके सब अपमान पीता रहा. जहारसिंह का अपहरण करके उसने पचास हजार रुपयों की फिरौती वसूल की. पर मलखान का सहयोगी गोवर्धन उससे टूट गया. तमाम दुश्चिंताओं के बीच मलखानसिंह बरखा से मिलने गया. बरखा के व्यवहार ने मलखानसिंह को और तोड़ा. उसे लगा बरखा की इस प्रतिक्रिया के पीछे जहारसिंह का षड्यंत्र है. मलखान ने जहार की हत्या की ठान ली. अब आगे पढ़िए––

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक है कि उसने विश्वास नहीं किया है, पर वह विश्वास-अविश्वास के बीच झूली ज़रूर है. मैंने बरखा को दिया ही क्या है? बोली थी—'सुहागिन होकर भी मन विधवा जैसा होकर रह गया है. किस बैर की सज़ा दे रहे हो मुझे?...' यह है बरखा का पहला दर्द और पुनिया की शर्त तो दूसरा दर्द दे देगी, उसका उपचार क्या कर पाऊंगा मैं?

मुझे कह देना चाहिए कि मैं इस तरह पुनिया की बात निबाह नहीं सकूंगा, पर यह कहने का साहस कहां से लाऊं? कैसे?

पुनिया का दोषी हूं मैं. उसे वैधव्य मैंने दिया है... अपने क्षणिक लाभ के लिए या अकारण ही सज्जनता दिखाने के लिए जहार के सामने अपने आपको उजागर करके मैंने ही पुनिया को लांछन दे दिया है. तब पुनिया की शर्त उसका अधिकार है!

अधिकार बरखा का भी है.

और मैं एक नाकारा आदमी, जो न पुनिया के लिए कुछ कर पाने की स्थिति में है, न बरखा के लिए.

मैं थोड़ी देर के लिए सोच-समझ से खाली होकर रह गया हूं या यों कि मेरे सोचों की सामर्थ्य-सीमा समाप्त होने लगी है.

"क्या सोचा है ठाकुर?" पुनिया का प्रश्न.

मैं थकी निगाहों से देखता हूं. चुप.

वह मुस्करा देती है, "कोई बात नहीं... तुम्हारी उलझन समझ पा रही हूं. ठकुराइन के बारे में सोच रहे होगे—जो बात मुझे जिला सकती है, वही बात उसे मार सकती है!.. है ना?"

मैं पुनः कहना चाहता हूं—'नहीं-नहीं...' पर नहीं कह पाता. इसलिए कि अब मुझमें बोलने तक का आत्मबल नहीं रह गया है.

पुनिया कहती है, "चिंता मत करो! मैं जी लूंगी... या यह कि मैं अपनी तरह मर लूंगी."

मैं एक गहरी सांस लेकर सिर झुका लेता हूं.

वह जूठे गिलास उठाकर भीतर चली जाती है. मेरा जी होता है कि इसी पल उठूं और भाग जाऊं यहां से...

वह लौट आयी है. एक बुत की तरह खड़ी होकर कुछ पल मुझे देखती रहती है, फिर कहती है, "रुकने के लिए नहीं कहूंगी मैं."

मैंने चौंककर देखा है उसे. ज़ाहिर है कि उसने मुझसे जाने के लिए कह दिया है. अपने लिए नहीं, मेरे लिए. शायद मेरे लिए भी नहीं, बरखा के लिए. पहली बार मुझे लगता है जैसे किसी ने मंदिर में पहुंचा दिया है और पुनिया एक मूरत है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी की मूरत!

मैं उठ पड़ता हूं. बिना उसकी ओर देखे हुए बाहर चला आया हूं और उसी तरह तेज़ी से बढ़ चला हूं जंगल की ओर... वही मेरी जगह है. वहीं मेरे लिए जगह है.

▣

सब कुछ इतना उलझावभरा और तकलीफदेह है कि मैं थककर सोचना बंद कर चुका हूं. शायद सोचने की शक्ति जाती रही है. यांत्रिक ढंग से अंधेरे रास्ते पर बढ़ता चला जाता हूं.

अंधेरों में यात्रा करना मेरे लिए नया नहीं रहा है. आधी से ज़्यादा उम्र ऐसे ही अंधेरों में बीत गयी. कभी अंधेरे भविष्य में दौड़ते हुए या कभी भविष्य को अंधेरे में दौड़ाते हुए. सिर्फ अंधेरे!

पुनिया और बरखा के भीतर की गांठ फिर से मेरे मन में उभर आती है और उसी के साथ मेरा वह निर्णय मुझ पर सवार हो जाता है, जिसे थोड़ी देर भावुकता और विवेक की आंधी ने लड़खड़ा दिया था—जहारसिंह को दंडित करने का निर्णय!

मैं रुक गया हूं. यह निर्णय मेरे पैरों में जकड़कर रह गया है. बरखा को इस मन:स्थिति में लाने का अपराधी जहारसिंह है...पुनिया के जीवन को मौत में बदल देने वाला अपराधी भी जहारसिंह ही है और इस कारण मेरा अपराधी जहारसिंह है.

मुझे जहारसिंह से हिसाब चुकाना ही होगा.

मैंने रास्ता बदल दिया है. जहारसिंह से भुगतना है मुझे. जब-जब इस तरह के निश्चय मेरे भीतर उगते हैं, तब-तब बहुत ज़्यादा सोच नहीं पाता. या मेरी तरह के लोग सोच नहीं पाते होंगे. शायद इसका कारण है हत्या का एक अध्यवसाय बन जाना. कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी पहली बार शराब पिये तो वह उसके गले में चुभती है, आंखों को झकझोर डालती है और जलन की एक लकीर गले से पेट तक खींच जाती है... पर वही आदमी जब दूसरी बार शराब के घूंट गले से नीचे उतारता है, तब अहसासों का पहला दौर मृत नहीं तो बेहोश ज़रूर होने लगता है... होते-होते यह दौर खत्म भी हो जाता है. अहसास मृत!

हम जैसे हत्यारों के साथ भी यही होता है. बिल्कुल इसी तरह. इसी तर्ज़ में. पहली हत्या का रोमांच, दूसरी और तीसरी के बाद इतना मृत हो जाता है कि फिर वह इससे ज़्यादा कोई अहसास ही नहीं देता कि आपने किसी गीत की कोई पंक्ति गायी है.

जहारसिंह को मारने से पहले और मारते समय यही होगा... होने लगा है...

अंधेरा गहरा है. शायद आधी रात की शुरुआत. अनुमान से जहार के गांव का रास्ता सोचता हूं मैं. दिशाओं को आधार बनाकर... जहारसिंह का गांव पश्चिम में है. फिर यह भी कि जहारसिंह का खात्मा करने के बाद मैं किस दिशा से निकल जाऊंगा? किस तरफ?

जहार के गांव से बैराड़ की ओर निकलूंगा मैं. वहां से मोहना और फिर जंगल में उतर जाऊंगा—घाटी गांव की ओर. जब तक पुलिस को मालूम हो पायेगा, उस समय तक मैं जंगलों में गुम हो चुका होऊंगा. यह भी कि बैराड़ थाने से बैराड़ की ओर खबर आयेगी और पुलिस सोच भी नहीं सकेगी कि मलखानसिंह थाने के गांव में आ पहुंचा है. मैं अपनी इस समझ पर खुश हो लिया हूं.

झांई की सनसनाहट अनवरत चल रही है... और मैं चलता जा रहा हूं. निश्चय की दृढ़ता ने थकान का अहसास मार डाला है. मुझे जहारसिंह की हवेली के बारे में जानकारी करनी होगी...

इस समय किससे पूछूंगा?

किसी को जगाना होगा. गांव में पहुंचते ही जो घर पहला होगा, उसी घर से जानकारी लूंगा. जानकारी से पहले सतर्कता के साथ अपनी राईफल छिपाये रखनी होगी. उजागर ढंग से भी पूछ सकता था, किंतु संभव नहीं. कारण है मेरा अकेला होना. जहार के गांव में राईफलें भी हो सकती हैं और जिस गांव में राईफलें हों, वहां संभलना होता है.

लगभग आधा-पौन घंटे तक अंधेरा चीरते हुए बढ़ा हूं और गांव में प्रवेश किया है. अब पहला घर...एक छोटे-से टापरे के करीब जा पहुंचा हूं. राईफल एक ओर टिका दी है, दरवाज़े पर दस्तकें देता हूं.

"कौन है?" दरवाज़ा खुला है. एक युवक सामने. हम लोगों के चेहरे एक-दूसरे के सामने धुंधलाये लगते हैं. शायद यह धुंधलाहट भी न होती, यदि उस युवक के घर में दीया न टिमटिमा रहा होता.

"राम-राम" मैंने आवाज़ में विनम्रता भर ली है, "पर गांव का आदमी हूं भाई. एक रिस्तेदार रहते हैं यहां... उनका घर मालूम नहीं है, इसीलिए..."

"कौन?"

"जहारसिंह. जहार ठाकुर."

"अच्छा-अच्छा..." वह बतलाता है, "उधर बायीं तरफ जो इकल्ला पक्का घर है ना, दोमंजिला, सफेद पुता है, अच्छी तरियां दीख जायेगा. वही है जहारसिंह का घर."

"अच्छा!" मैं मुड़ पड़ता हूं, इस तरह जैसे जाने वाला ही हूं. वह दरवाज़ा बंद कर लेता है, मैं एक क्षण रुककर दूसरी दीवार से टिकी अपनी राईफल उठा लेता हूं. सतर्क नज़रों से आगे-पीछे देखता हूं और फिर आश्वस्त होकर जहारसिंह के घर की ओर चल पड़ता हूं.

सन्नाटा है. सन्नाटे को ज़्यादा भयावह बना देती है झांई की अनवरतता. मैं जहारसिंह के दरवाज़े आ ठहरा हूं. सोच चुका हूं कि किस तरह जहार को बुलाऊंगा. मुझे याद है भटनावर गांव का कोई रिश्तेदार जहार की फिरौती देने आया था. उसी का नाम बोलूंगा—राधे! यही नाम था उसका. मैं कुंडी खड़खड़ाने लगा हूं. ऊपर की मंज़िल में खिड़की खुलती है और शब्द मुझ पर आ गिरते हैं, "कौन है भईया?... क्या बात है?"

"हम हैं राधे... भटनावर से आये हैं."

"अरे?... इस बखत? क्या हुआ?"

"पैले दरवज्जा खोलोगे कि नहीं...?" मैं बड़े अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपनापे से कहता हूं.

"हां-हां, क्यों नहीं . . .जरा ठहरो!" खिड़की बंद हो जाती है. मैं तेजी से सोचता हूं कि अब मुझे क्या करना होगा, किस तरह? जहारसिंह के घर में राईफल भी हो सकती है. खाता-पीता घर है. ऐसे घरों में अक्सर हथियार होता है, उस हथियार से बचाव के बारे में मुझे पहले सोचना होगा.

मैं सोच लेता हूं—जो सबसे पहले दरवाजा खोलने आयेगा, उसे ही बचाव का माध्यम बनना होगा.

दरवाजा खटकता है. मैं सतर्क हो गया हूं. हमले के लिए तैयार. और दरवाजा खुलता है, "तूने तो हद्द करदी राधे. . . . इस बखत. . ." शब्द पूरे नहीं हो पाते उसके, मैं राईफल लेकर एकदम टूट पड़ता हूं, "चुपचाप खड़ा रह! . . . भागा तो गोली मार दूंगा. मेरा नाम मलखानसिंह है."

वह हकबकाकर धरती पर गिर पड़ा है. लालटेन छिटक-कर एक ओर जा गिरी है. लौ भक्-भक् करती हुई. उसकी आंखें विस्मय और आतंक से फैली रह जाती हैं. सांस ज़ोरों से चलती हुई.

"लालटेन सीधी कर!" मैं गुर्राता हूं.

वह कभी मुझे और कभी लालटेन को देखता हुआ भयभीत धरती पर सरकता है. लालटेन सीधी कर देता है.

"पर. . . पर मेरा कसूर, मलखान ठाकुर?" वह घिघिया रहा है. अब मैंने ठीक तरह देखा है उसे, प्रौढ़ आयु का आदमी. ज़रूर जहारसिंह का बड़ा भाई या चाचा होगा.

"तेरा कसूर नहीं है. मारूंगा भी नहीं तुझे. . . पहले बता जहार कहां है?" मैं बुदबुदाकर पूछ रहा हूं.

"जहार. . . ऊपर, ऊपर है. सो रहा होगा." वह कांपने लगा है, पर मेरे आश्वासन ने दम डाल दिया है उसमें.

"बुला उसे!" मैं राईफल की नली से उसके सीने पर धक्का मारता हूं, बहुत हौले, जैसे उसके भीतर से आवाज़ उकेर रहा हूं.

"पर. . . . ?" वह घबरा गया है, "फिरौती दे तो दी थी ठाकुर?"

"बहस मत कर! . . . पहले उसे बुला!"

"ठीक! . . ठीक है." वह हांफने लगा है. फिर ज़ोर से जहारसिंह को पुकारता है, "ज़रा नीचे आ जहार! . . .ओ जहारसिंह!"

ऊपर कुछ खड़खड़ाहट होती है, फिर सवाल आता है, "क्या है?. . . "

"अरे, नीचे आ ना!"

"तू तो काका रात में भी चैन नहीं लेने देता." जहार की बड़बड़ाहट और फिर उसके आने की पदचाप सुनता हूं. जहारसिंह का काका कातर दृष्टि से मुझे देख रहा है. लगता है जैसे उसकी आंखों में हाथ जुड़े हुए हैं. . . प्रार्थना लिखी हुई है कि उसे जीवनदान दिया जाये.

जहारसिंह नीचे आ जाता है. पौर में. अलसाया हुआ, पर यह आलस मुझे राईफल लिये और अपने काका को धरती पर पड़े हुए देखकर टूट जाता है, पर वह भागता नहीं बड़ी बुलंदी से सामने आ खड़ा होता है, "राम-राम ठाकुर! . . . बैठो. कैसे आना हुआ?"

मैंने दांत भींच लिये हैं. अपने आप पर बहुत काबू करने की कोशिश करता हूं, किंतु थम नहीं पाता. इसकी यह हिम्मत कि मुझसे इस तरह बात करे! इसे कांपना, गिड़गिड़ाना और मेरे पैरों में लोट जाना चाहिए था. मैं कौंधकर राईफल की नली उसके सीने में एक छुरे की तरह भौंक देता हूं. वह चीख कर गिर पड़ता है. मैं उससे भी कहीं ज्यादा गरजकर कहता हूं, "हरामज़ादे! . . . दो मुंहे! . . बताता हूं कि क्यों आया हूं!"

वह नली की चोट से अब भी कराह रहा है. . . शायद उसकी एक-दो पसलियां चटक गयी होंगी. उसका काका भाग खड़ा हुआ है भीतर. ऊपर हड़बड़ी में स्त्रियों के दौड़ने-भागने की आवाज़ें आ रही हैं—'मलखान! . . .बागी! . . .' कुछ आवाज़ें भी.

अब मुझे ज्यादा देर नहीं करनी चाहिए. मैं राईफल से उसका निशाना लेता हूं, "मैं इसलिए आया हूं कि तूने मेरी बहुत तारीफें की हैं. . . मेरे साथ-साथ उस निर्दोष औरत की भी बहुत तारीफें की हैं. . . ले. ." ट्रिगर दबाने को ही हूं कि एक खूबसूरत औरत सामने आ जाती है. मेरी राईफल और जहार के बीच. . . रोती, कांपती, बदहवास. . . !

मैं उसे धक्का मारकर हटा देना चाहता हूं, पर. . .पर यह क्या हो गया है मुझे? मैं एक मूरत की तरह स्थिर होकर रह गया हूं. उसे देखता हुआ. वह जहार की घरवाली है. . . वही हो सकती है. . . और कौन?

"हट् जा! . . . " जैसे-तैसे बोल पाता हूं मैं.

"नहीं-नहीं, मलखान भईया! . . . नहीं. इसे छोड़ दो! नहीं तो इसके साथ-साथ मुझे भी मार दो."

मैं कहता हूं,"हट जा!" मैं चीखा हूं, पर मेरी आवाज़ दब गयी है. लगता है, उस औरत ने मेरे भीतर ही कहीं उस आवाज़ को पकड़ रखा है. . . रुंधकर निकली है. गरज के बजाय एक निवेदन बनकर. यह क्या हो रहा है मुझे? लगता है जैसे उस औरत के चेहरे पल-पल बन-बिगड़ रहे हैं. . .किसी क्षण मुझे वह जहार की सुहागिन लगती है, किसी क्षण बरखा की तरह सुहागिन होकर भी विधवा-जैसी और किसी पल एकदम पुनिया. . .

फिलहाल वह सुहागिन है. . .

मेरा ट्रिगर दबेगा और वह पुनिया बन जायेगी. . .

और जहार ने उसे जिस विश्वास-अविश्वास की खाई में गिराये रखा है, उसने शायद किसी-किसी पल उसे बरखा की तरह जिलाया होगा.

पर यह सब सोचना और इसमें उलझकर अपना हित छोड़ देना—समझदारी नहीं होगी मेरी. मैंने मलखान को मलखान बनाये रखने की चेष्टा की है, पर वह सिर्फ चेष्टा ही रहती है. मेरा अपने आप से ही विश्वास उखड़ने-टूटने लगा है. लगता है राईफल जो हमेशा मेरे हाथों से मेरे जिस्म के हिस्से की तरह ही चिपकी रही है, अचानक परायी हो गयी है.

"इसे छोड़ दो भईया! . . . इसने जो गल्ती की हो, सो मेरे सिर! . . . मेरे लिए नहीं, बच्चों की खातिर छोड़ दो!" वह मेरे पैरों में गिर गयी है—बिलखती हुई और उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कायर, बेईमान पति सीना थामे हुए उसी तरह धरती पर बिलबिला रहा है. मैं राईफल नीची कर लेता हूं. मैं नहीं चाहता हूं, इसके बावजूद ऐसा कर रहा हूं. एक गहरी सांस लेता हूं और झटके से जहार की घरवाली के सिर के नीचे से अपने पैर निकालकर मुड़ पड़ता हूं... मैं बाहर आ जाता हूं... और बाहर आते ही मुझे याद हो आता है कि मैं अकेला हूं और इस गांव में राईफलें भी हो सकती हैं. मैं भाग खड़ा होता हूं. बीहड़ों में... जंगल उतरता हुआ... तेज, बहुत तेज...!

▣

हांफते-हांफते मैं एक चट्टान पर आ गिरा हूं. भोर होने को है. आंखों में जलन और उससे भी कहीं ज्यादा जल रही हैं मेरी आंतें. जांघों और पिंडलियों में सूजन आ गयी है... दिमाग उस सबसे कहीं ज्यादा थका हुआ और पराजित. सवालों की एक भीड़ और उन सबसे ऊपर बैठी हुई एक अंधेरी, काली, डरावनी, दुश्चिंता. मैं अकेला हूं... गिरोह नहीं है मेरे पास. फालिज मारे हुए एक आदमी जैसा होकर रह गया हूं... कोरा नाम फैला हुआ है सब तरफ. यह कितने दिन जिंदा रख पायेगा?

या इस नाम के कारण मुझे कितने दिन जिंदा रहने देगी पुलिस?

सारे सवाल उठ-उठकर गड-मड हो जाते हैं. एक-दूसरे से टकराते हुए सवाल. मैं चित लेट जाता हूं चट्टान पर. आंखें मूंदे हुए... सोना चाहता हूं, पर नींद नहीं आती. सवाल एक-दूसरे को काटते, दिमाग के दायें-बायें से निकलने लगते हैं... ऐसे जैसे धागों की कई पिंडियां एक-दूसरे से उलझ गयी हों...

किसलिए मैंने जहारसिंह को जिंदा छोड़ दिया? उसने पुनिया को तबाह किया. उसने किसी और तरह मुझे भी तबाह किया और किसी अलग तरह उसने अजाने ही बरखा को बरबाद कर डाला!... मुझे नहीं छोड़ना चाहिए था.

लगता है मेरे भीतर ही कोई और मलखानसिंह बैठा हुआ है. सवाल उठाता है, जवाब दे देता है.

उसे मारकर भी मुझे क्या मिल जाता? इससे पहले जिन-जिन को मैंने मार दिया—ऐसा क्या पा गया! सच तो यह है कि हर बार हर हत्या मेरे ही धीरे-धीरे मरने की प्रक्रिया का एक अंश बनती गयी है. कुछेक हत्याएं हैं, जिन्होंने अलग-अलग तरह बहुतों की हत्या की है... और सबका हत्यारा मैं!

चाचा को गोली मारकर मैंने बीहड़ों में मुंह छिपाया. उस तरह मैंने अपनी ही हत्या की. पर इस हत्या ने मेरे सुख-चैन, घर-बार, प्यार, पत्नी... सभी कुछ छीन लिया.

और इस तरह मैंने उनकी भी हत्या कर दी. बूढ़ी मां एक साथ जी-मर रही है. बरखा भी कुछ इसी तरह सांसें लिये जा रही है और मैं हूं, जिसे किसी पल अपनी ही सांस अपनी महसूस नहीं होती. लगता है कि किसी राईफल में मेरी सांसें कैद हैं... वह राईफल, जिसकी गोली लगते ही मैं मर जाऊंगा. वह उगलेगी गोली, मैं उगल दूंगा सांसें!

याद आता है एक बार बात-बात में कुछ इसी तरह की बात निकल पड़ी थी—मेरे अपने साथियों के बीच. ... थी मुकुंदपुर के जमींदार ठाकुर ने. अंगरेजी शराब और ... बेड़नी बुलायी थी दतिया जिले के किसी गांव की. नाच ... रंगत. नया-नया गिरोह संभाला था मैंने. हरचरन को ... पहले ही पुलिस ने मुकाबले में मार दिया था और ... आसानी से गिरोह का सरदार बना था.

गैस की दूधिया रोशनी, तबला, हरमोनियम, ... लोढ़, सब इंतजाम. जमींदार के चार नौकर सेवा-... हाजिर. शाम से बोतलें खुलीं. जमींदार विश्वासी ... बागियों और पुलिस से एक-जैसा रसूख. अपराध और ... हाथ मिला लें तो गौरमिंट कहां रही?... इसलिए ... कहीं नहीं थी. अगर कहीं थी तो मुकुंदपुर के जमींदार ... नहीं थी.

बिंदा ने पहले ही बतला दिया था, "मुकुंदपुर के ... बड़े समझदार और अपने खास आदमी हैं. जब हरचरन ... संभाला था तो ऐसे ही दावत दी थी. अब तुमने ... संभाला है, तो तुम्हारी दावत!"

तो ठाकुर स्वागत कर रहा था. बरफ, सोडा, ... की शराब... सब हाजिर! तिस पर बिजली-सी कड़... आंधी-सी फड़कती जवानी लिये बेड़नी हाजिर. ... सबसे बड़ी बात थी—इलाके के दरोगा-दीवान की ... असल में दावत से ज्यादा यह मेल-मिलाप की पार्टी ... ने इस बारे में भी समझा दिया था, "जमींदार पर ... रखो... मिसर थानेदार भी उसका है, हम भी ... गिरोह को चार घर-बाहर के आदमी लगते ही हैं. मि... पहला ही मिला है अभी...."

कभी हरचरन से भी इस मिसर का जिकर सुना ...

और अब मिसर से हाथ मिलना था मेरा. सो हाथ ... गले मिले. एक-दूसरे की राईफलें देखीं. तारीफ की. ... गिलास, सबके सामने आये और पहला गिलास जमीं... उठाकर ऊंचा किया, "जै भगवती मईया की!"

सब अपने-अपने सुर में बोले—कोई सिबजी की ... भगवती की और कोई कालका मईया की जै!... ... उतरे. प्याज, नमक, टमाटर, कलेजी के दौर...

गले खुले, तो बातें खुलीं. पहले इलाके की बातें, ... मियों की बातें, मिसर ने हरभजन की तारीफ की, ... पिछले एस.पी. और आज के एस.पी. की खुशी-नाखुशी ... में बतलाया, फिर अगले पेग बने. घूंटों के बीच, कोई ... आयी और उस घटना के सिलसिले में बजरंगी की ... निकल आयी. मिसर ने ही पकड़ा था उसे. हरभजन ... इलाके में बागी बजरंगी का ही जोर था, पर एक दिन ... क्या हुआ कि बजरंगी दिन दहाड़े थाने आ पहुंचा था. ... बांह में लगी हुई थी. उसे देखकर हवलदार, सिपाही ... हुए थे, और बजरंगी जा घुसा था मिसर के कमरे में. ... बक्का हो गया था मिसर थानेदार. बजरंगी ने रैफल ... पेटी कंधे से उतारकर उसके सामने टेबल पर रख ... बोला था, "लो, दरोगाजी, बंद कर दो मुझे!"

मिसर आंखें मलने लगा था—दिन में सपना ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या संभव है?... बजरंगी, जिसे मारने आई. जी. से लेकर थाने तक फोन, वायरलेस, जीपें, राईफलें व्यस्त थीं, यों ज़िंदा आ पहुंचे? पर जल्दी ही विश्वास करना पड़ा था मिसर को. बजरंगी ने समर्पण किया था. मिसर ने लॉकअप में डाला, चाय-पानी करवाया. एस. पी. को खबर भिजवायी और बोला, "तू ऐसे क्यों आ पहुंचा बजरंगी? जानता है ना कि तुझे फांसी होगी?"

"मुझे तो साब, फांसी से भी कुछ बुरा होता हो, वह होना चाहिए!" बजरंगी ने मुंह बिसूरते हुए कहा था.

मिसर फिर हक्का-बक्का!

और बजरंगी ने सुनाया था कि कैसे एक-एक हत्या से उखड़ने-टूटने लगा था वह... एक बार उसे अपने भतीजे पर ही शक बैठ गया—पुलिस का आदमी है. बस, मार दिया बजरंगी ने. बहुत दिन इसी सोच में परेशान रहा कि भतीजे को मार दिया और खुद...? फिर एक बार डकैती डाली. डकैती में किसी सुहागन के गले से मंगलसूत्र उठा लाया और उसके घरवाले को मार आया... यह मंगलसूत्र अपनी औरत को ला पहनाया बजरंगी ने. जब औरत को मंगलसूत्र की कहानी सुनायी तो उसने गले से उतार फेंका और बजरंगी को गालियां देकर घर से खदेड़ दिया कि खून-सना सोना, तिस पर उस गहने से सुहाग का संबंध और किसी को वैधव्य देकर बजरंगी अपनी औरत को सुहाग दे रहा है. बजरंगी बहुत उखड़ गया. ढेर घटनाएं सुना डाली थीं मिसर थानेदार ने. आखिर में बोला था, "मलखान ठाकुर, बजरंगी बिल्कुल बोदा हो गया था. जब थाने में आया तो राईफल उठाते हाथ कांपते थे उसके. इतना डर गया था कि अदालत में पहली बार ही सब जुर्म मान लिये. फिर पागलों की तरह चीखने लगा था कि मुझे फांसी दो, सूली चढ़ाओ... जाने क्या-क्या?" और बात खत्म करके ज़ोर से हंस पड़ा था मिसर.

पर मैं सहसा गंभीर हो उठा था... बजरंगी कायर नहीं हुआ था. सच तो यह है कि बजरंगी को मालूम हो गया था कि वह खुद को ज़िंदा रखने का धोखा दे रहा है और समझता है कि दूसरों को मौत दे रहा है. असल में बजरंगी खुद ही मरने लगा था. जिस दिन पूरा मर गया उस दिन थाने जा पहुंचा और बोलने लगा कि फांसी दे दो, सूली चढ़ाओ.. .वगैरा-वगैरा. अनायास ही मुस्कान आ गयी थी चेहरे पर.. ऐसे मरे हुए आदमी को फांसी दो या सूली चढ़ाओ—क्या फरक पड़ता है?

फिर बहुत बहस होती रही थी इस बात पर.

पर अक्सर बजरंगी के हाल तक पहुंचने से पहले ऐसी बहसों का असल मुद्दा समझ में कहां आता है! उस दिन भी किसी को समझ नहीं आया था.

कुछ आता भी तो, बेड़नी की थिरकन ने कुचल-मसल डाला. पर मेरे दिमाग़ में उसी पल यह अहसास जनम आया था कि बजरंगी के साथ जो बीता, सो सबके साथ बीतता होगा. अंतर यही कि कोई उतनी तीव्रता से जल्दी महसूस कर पाता है, कोई नहीं!

तब क्या मैं उस स्थिति को आ पहुंचा हूं, जहां बजरंगी पहुंचा था...? मैं सिहर गया था एकदम. नहीं-नहीं.

एक दबी सिसकती आवाज़ मैंने अपने ही भीतर से आती महसूस की थी—शायद हां!... मैंने एकदम आंखें खोल दीं थीं. भोर की रोशनी तेज़ हो गयी थी और पेड़ों की फुनगियों और पत्तों के बीच से सूरज की गुदगुदाने वाली किरणों ने सारे माहौल को मुस्कानों से भर दिया था.

मैंने एक गहरी सांस ली. उठ बैठा. आलस के बावजूद अब पलक झपकना असंभव था. यों भी भूख और शरीर की तड़कन ने मुझे एक साथ बिजली के लगने वाले सौ-सौ करंटों से भर रखा था. हर पल झनझना उठता था, हर पल बदन के जोड़-जोड़ से चीख की तरह उठ पड़ती कसक.

मुझे यहां से उठ पड़ना है.. .किसी गांव में पहुंचना होगा. वहां से मालूम करना होगा कि 'गुरु' इन दिनों कहां है? इस जिले में 'गुरु' ही ऐसे आदमी हैं, जो गिरोह के लिए आदमी देते हैं. इन बिगड़ैल आदमियों को और अपराधियों को 'गुरु' जुटाते हैं और फिर सही गिरोह में पहुंचा देते है या किसी की देख-रेख में गिरोह ही बनवा देते हैं. इन 'गुरु' का भय इतना है, जितना मेरा भी नहीं है. होने का ठहरा. जो दसियों अपराधियों को जनम और संरक्षण देता हो, कानूनी दांव-पेंच से बचाता-निकालता हो, वह मुझ जैसे अपराधी की तुलना में कितना ज़बरदस्त हुआ!

इसलिए मैं 'गुरु' को पा लेना चाहता हूं. वह मिल जायें तो पलक मारते आदमी आयेंगे, पलक मारते राईफलों का जुगाड़ हो जायेगा. .और फिर यह लगभग मृत, थका हुआ मलखान,मलखानसिंह हो लेगा!

मैं उठ पड़ा हूं.

▣

तीन दिन की लगातार मेहनत के बाद 'गुरु' से भेंट हुई. आदमी की प्रतीक्षा कर रहा हूं. कहा है कि भूरा खाह के पास मिलेंगे वे. मैं उस खास जगह पर रहूं. समय रहते आ पहुंचा हूं.

वे आ पहुंचे हैं. इस जगह, जहां मैं बैठा हुआ हूं, ऐसी ओट और बचाव की जगह है कि मुझ पर एकाएक किसी की नज़र नहीं पड़ सकती,जबकि मैं सबको देख सकता हूं. मैंने देख लिया है उन्हें.

दूर जंगल चीरते बढ़े आ रहे हैं वे. दो जवान. उनके चेहरे क्रमशः स्पष्ट होते जा रहे हैं.. .एक—तीस पार कर चुका होगा, दूसरा तीस के भीतर.. .दोनों तेज़ लगते हैं. 'गुरु' ने बतला दिया था कि आदमी पक्के हैं. एक मुड़ैरी गांव में किसी युवती की हत्या कर चुका है. वापिस नहीं जायेगा. दूसरा धर्म का सच्चा—'गुरु' की अपनी जमानत है. और 'गुरु' की जमानत माननी ही पड़ती है. असल में सच्चे हैं 'गुरु'!

मुझे लगता है जैसे मेरी मुरदा होती जा रही नसों में रक्त-संचार शुरू हो गया है. क्रमशः गहरा और गहरा होता जाता जीवन-तत्व. व्यर्थ ही मैंने सोचा था कि मैं बजरंगी हो रहा हूं. . .झूठ!

मैं आज भी मलखानसिंह हूं!...

वे पास आ गये हैं. भटकी-भटकी नज़रों से यहां-वहां देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, मैं नहीं दीखता उन्हें. बहुत पास होते हुए भी नहीं दीखता. मैं उठकर उनके सामने आ खड़ा होता हूं. वे चौंक जाते हैं. सहसा मुझे पहचान लेते हैं. झुककर पैर छू लेते हैं मेरे.

"पा-लागे ठाकुर !"

"आओ." मैं उन्हें अपनी जगह ले आता हूं. यहां आराम से बैठकर बातें की जा सकती हैं.

"क्या नाम है तेरा?"

"मैं हज़ूरी." तीस साल से कम उम्र का युवक उत्तर देता है और उसके सिलसिले ही दूसरा कहता है, "मैं घासीराम."

"किस गांव के हो?"

"एक ही गांव के समझो." घासीराम ने उत्तर दिया.

"एक ही गांव के क्यों?" मैं एकदम कठोर हो जाता हूं. गिरोह में पहली भरती का तरीका यही होता है, "गुरु ने कहा था, तुम अलग-अलग गांव के हो!"

वे सिटपिटा जाते हैं. घासीराम कहता है, "हैं तो अलग-अलग गांव के, पर तीन मील का फरक है. . .एक ही गांव जैसे हुए!"

वे अपने 'अपराध' बतला देते हैं. घासीराम का भाई अपने ब्याह के आठवें दिन ही मर गया था. विधवा भाभी ने पुनर्विवाह कर लिया. घासीराम का कुल-वंश बहुत बदनाम हुआ. घासीराम ने अपनी इज़्ज़त इस तरह रखी कि भाभी की नाक काट ली और उसके दूसरे पति की हत्या कर डाली. हज़ूरी भी इज़्ज़त की खातिर डाकू होने आया है. इज़्ज़त उसकी निजी नहीं, पूरे गांव की थी. यों कि उसके गांव से कोई आदमी बागी नहीं है. जिस गांव से कोई बागी न हो, उसकी इज़्ज़त उन गांवों की तुलना में कितनी छोटी हो जाती है, जिससे एक न एक बागी होता है! गांव के चार लोगों में इस बात पर दुख होता था. यह दुख हज़ूरी ने फरार होकर और एक राईफल चुराकर पूरा कर दिया है. अब हज़ूरी के गांव और गांव वालों का सिर ऊंचा हो रहेगा!

मैंने चुपचाप सुन लिया है, पर भीतर ही भीतर इन दोनों के प्रति सुलग उठा हूं. एक ने निरपराध हत्याएं की हैं, तो दूसरा मूर्ख है, जो ख़्याली दुनिया में जीकर अपनी दुनिया को अंधेरे में डालने चला आया है. घिनौने हत्यारे और मूर्ख की सहायता से मैं अपनी सांसें जिऊंगा? ऐसी सांसें मुझे नहीं चाहिये! ......ऐसे साथी भी मुझे नहीं चाहिये....!

दोनों आराम से बैठे हैं, जैसे दीक्षित हो चुके ! अब गिरोह-धर्म निबाहना शेष. घासीराम ने सिगरेट का पैकट निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया है, "लो, ठाकुर!" अचानक मैं उस पैकट को हवा में उछाल देता हूं, लात की एक ठोकर देता हूं उसमें, फिर तमककर उठ खड़ा होता हूं, "गधे! . .चले जाओ यहां से! ...जल्दी! ...."

वे हड़बड़ाकर उठ जाते हैं, पर जाते नहीं. मेरी तरफ ऐसे देख रहे हैं जैसे मैं पागल हो गया हूं.

"सुना नहीं तुमने? ... मैं राईफल उठाता हूं. वे घबरा जाते हैं. घासीराम पूछता है, "पर...हुआ क्या ठाकुर? .... हमारी गलती?"

"गलती बताऊं तुझे?" मैं हिचक पड़ता हूं, जैसे मुझे जोर से काट लिया है या कोई नुकीली सुई चु... है, "तो सुन, तू एक हरामी आदमी है. कमीन! ... तो इस बखत गोली मार देनी चाहिए थी...तू समझ कि मैंने तुझे छोड़ दिया है ... बस, अब तू... चला जा यहां से!" मैं आवेश और झुंझलाहट में अस्तव्यस्त हो उठा हूं कि मुझे यह सब बतलाने की ... होते हुए भी कि घासीराम ने अपनी भाभी के साथ ... किया है, उसके पति की निरपराध हत्या की है... नहीं पाता. मेरे मुंह से उसके लिए गालियां, धमकी ... धिक्कार ही निकल पाते हैं.

घासीराम सिटपिटाकर जाने के लिए मुड़ता है. उसके पीछे-पीछे हज़ूरी. मैं उन्हें जाते हुए देखता ... हूं. देखता रहता हूं...

और मैं फिर अकेला हो गया हूं ... फिर थक... हूं ... फिर चल पड़ा हूं निरुद्देश्य!

ऐसे गिरोहों के बल पर नहीं जिऊंगा.

मगर मैंने समझदारी नहीं की. वे दो थे. दोनों के... बढ़िया राईफलें भी थीं. मुझे पछतावा होता है.

कितना ख़ूबसूरत, अच्छा लड़का था वह हज़ूरी. मेरे साथ उलझकर या तो किसी दिन जान खो देता... फिर इतने जुर्म कर बैठता कि मेरी ही तरह जीता ... नहीं, जीता नहीं—मरता!

मुझे अपने आप पर हंसी हो आयी है. अपनी रुलाई से भरी अपनी हंसी. मैं भी कैसा मूर्ख हूं! स... हूं कि मैं जी रहा हूं.

यहां से सिर्फ तीन किलोमीटर है मेरा गांव. ... नहीं था कि इधर आ पहुंचूंगा. मालूम नहीं किस बेसु... आ पहुंचा हूं ... जानता हूं कि मैं अपने गांव नहीं जा... हूं, श्मशान घाट जा रहा हूं ... यही कुछ सिद्ध होने ... लिए. वह मेरा गांव है, इसलिए पुलिस का एक पुरा... रहता है वहां. बरखा की ही तरह प्रतीक्षारत.

कभी तो आयेगा मलखानसिंह .....!

▣

दूर, पेड़ों का एक झुरमुट-सा दीखता है. गांव की ... खेतों की मेंढों से गुज़रता हुआ मैं क्रमशः बढ़ा जा ... रह-रहकर ध्यान हो आता है—बरखा का. और उससे ... जुड़कर खयाल आता है—वहां पुलिस गार्ड ज़रूर है...

बाहर वाले कमरे में ही रहता है गार्ड. एक पुलिस... यानी चार सिपाही और एक हवलदार. बढ़िया रा... कारतूसों की भरी पेटियां. . मेरी ज़िंदा लाश का ...

वे कल्पना भी नहीं कर सकेंगे कि मलखानसिंह ... आ पहुंचेगा...बिल्कुल बजरंगी की धुन में. अंतर केवल... होगा कि बजरंगी थाने में पहुंचा था और मैं अपने बीहड़... लदे गांव में पहुंचूंगा.

वे हक्के-बक्के हो जायेंगे. हो सकता है कि ... ज़्यादातर की हिम्मत उसी तरह जवाब दे जाये ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजरंगा ५.। देखकर, संतरी-सिपाही, [illegible] भाग खड़े हुए थे. घबरा जाने और भौंचक्के हो रहने की बात ही है—कौन होगा जो इस तरह बारूद सुलगते पलीतेवाली तोप के मुंह पर खुद ही जाकर खड़ा हो जाये!

पर मैं जा रहा हूं. . .

शाम की शुरुआत. सूरज का चेहरा पीला होने लगा है और उसके साथ ही किरणें रौनक की उमर होते हुए भी बरखा की तरह उदास और रुग्ण हो उठी हैं. रोशनी है, पर बहुत धुंधलायी हुई. इधर-उधर से उठती गाय-भैंसों के रंभाने की आवाजें. एक लोकगीत गुनगुनाता-लगता मौसम.

कौन कहता है कि मैं अकेला हूं! सब कुछ तो है यहां. . ये मौसम, खुशियां, पेड़ों के झुरमुट से झांकता गांव और आसमान की ओर उठता हुआ धुआं. . इसको कुछ समय के लिए खो बैठा था मैं. कितना अकुलाया हूं, इस सबको फिर से पा जाने के लिए. और कैसे सपना बनकर रह गया यह सब!

पर आज पा जाऊंगा. . . इस तरह कि फिर कभी गुमने की आशंका न रहे. मैं अपने भीतर एक झरने की खिलखिलाहट महसूस करता हूं. वह सपना, जिसे अपने बाकी जीवन में अक्सर संजोये रहता हूं, सहसा ही किसी झरने की तरह मेरे भीतर उतरकर खिलखिलाने लगा है—एक खूबसूरत, सलोने सच की तरह.

बरखा होगी वहां. . . मैं उसे देखूंगा! इस देखने में और उस देखने में बहुत अंतर होगा, जिस तरह मैं बागी रहकर उसे देखता रहा हूं. . . .

मैं गांव की सीमा में आ जाता हूं. कुछ स्त्रियां मिली हैं. सहमकर देखती हैं और घूंघट खींच लेती हैं. और कुछेक ग्रामीण भी मिले हैं. . .

"राम-राम ठाकुर!. . . "

"राम-राम!" मैं रुके बिना तेज़ी से भीतर और भीतर धंसता जाता हूं. पास के कच्चे घर से एक वृद्ध निकल आया है. गांव का बढ़ई. कक्का कहता हूं इसे. . .

"मलखान!"

"हूं!" मैं मुड़ता हूं, "कैसा है कक्का?"

"मैं तो ठीक हूं, पर तू यहां?" वह भयभीत है. . .

"हां. . . " जी हुआ, "मैं मुस्कराया हूं, "सोच रहे होंगे कि पुलिस के रहते कैसे आ गया हूं. . यही ना?"

"नहीं भईया, अब यहां पुलिस कहां है?" वृद्ध की आवाज़ में उसकी उम्र से ज़्यादा थकान है.

"क्यों?" मैं चकित हो गया हूं.

"जब तेरे आने की आस ही खतम हो गयी, फिर पुलिसवाले क्यों रहेंगे भला?" वृद्ध कहता है, "वे तो कल ही लौट गये!"

मैं हैरान देखता हूं—कुछ भी समझ नहीं पाता. वृद्ध मेरे करीब आ गया है, "परसों बरखा नहीं रही, और बरखा नहीं रही तो कौन बचा, जिसके लिए तू यहां आयेगा? वे चले गये!"

बरखा नहीं रही. बरखा नहीं रही. . . मैं बुरी तरह लड़खड़ा गया हूं. मैं रो पड़ना चाहता हूं, पर पहली बार पाता हूं कि रोना भी सहज नहीं. उस वृद्ध ने आगे भी कुछ कहा है. . .

ग़ज़ल

वेषभूषा पहन पुजारी की,
है खड़ी शख्सियत शिकारी की.

होंठ पे वेद की ऋचाएं हैं,
हाथ में मूठ है कटारी की.

आँसुओं को ग़ज़ल बनाने की,
हम गरीबों ने दस्तकारी की.

दिल मिला बादशाह का हमको.
जन्मपत्री मिली भिखारी की.

▣ अम्बर

क्या कहा है, मैं सुनकर भी सुन नहीं पाया हूं. शायद सुनने के लिए कुछ शेष भी नहीं रहा.

बरखा नहीं रही और पुलिस चली गयी. अब घर में घर के सिवा कौन रहा! किसलिए मुझे जाना चाहिए? क्यों जा रहा हूं?. . .

मैं लौट पड़ा हूं. सूरज डूब गया है. रोगी, कमज़ोर किरणें गुम हो चुकी हैं. अंधेरा उतरने लगा है. मेरे भीतर बहता झरना कब सूख गया—मुझे मालूम नहीं. अब सपने नहीं आयेंगे. शायद वे सीढ़ियां ही नहीं रहीं, जिन पर सवार होकर सपने पलकों के भीतर पहुंचते हैं. मैं फिर से उतर आया हूं उसी रास्ते पर, जिस पर एक बार अकेला उतरा था. अंतर यही है कि इस बार मैं पहले की तरह भागूंगा नहीं. मैं भयभीत भी नहीं हूं. मैं निश्चिंत हो गया हूं या यों कि मैं चिंता-अचिंता से मुक्ति पा चुका हूं.

मैं अकेला हूं. . पर लगता ही नहीं है कि अकेला हूं. महसूस करने की शक्ति-सामर्थ्य ही चुक जाये तो भीड़ में रहो या अकेले—कोई अंतर नहीं पड़ता.

अब सामने न पेड़ों का कोई झुरमुट है, न यहां-वहां से लोकगीत की गुनगुनाहट-जैसी गाय-भैंसों के रंभाने की आवाज़ें और न ही रोशनी का कोई इशारा. . .

यहीं तक लिख पाया था मलखान सिंह. आगे लिखने का न तो समय मिल पाया होगा, न आवश्यकता ही रही होगी . . . बहरहाल इतना निश्चित है कि जितना उसने लिखा—वह बहुत से बहुत ज़्यादा है!

● 53/14, रामजस रोड, करौल बाग़,
नयी दिल्ली-110005

यह उपन्यास पुस्तक रूप में पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-32 से शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रसंगवश

■ महेंद्र कुलश्रेष्ठ

२२ लाख डालर में उपन्यास बिका

अमेरिका में पेपरबैक व्यवसाय बहुत आगे बढ़ चुका है. पिछले दिनों प्रख्यात लेखक मारियो पुज़ो के नये उपन्यास 'फूल्स डाइ' का पैपरबैक संस्करण 22 लाख डालर (पौने दो करोड़ रुपये) में बिका. इसके लिए बाकायदा नीलामी हुई और बढ़-चढ़कर दाम लगाये गये. ये दाम अब तक हुई इस तरह की बिक्रियों में सबसे ज्यादा हैं. इससे दुनिया भर के प्रकाशक चकित रह गये.

मारियो पुज़ो का उपन्यास 'गॉडफादर' भी इसी तरह लोकप्रिय हुआ था. उस पर बनी फिलम भी बड़ी सफल रही. उसके बाद लेखक ने 'गॉडफादर-2' लिखा और अब वे 'गॉडफादर-3' लिख रहे हैं.

इस बिक्री का 40 प्रतिशत प्रकाशक को मिलेगा और 60 प्रतिशत लेखक को—जबकि आम तौर पर दोनों को 50-50 प्रतिशत मिलता है. 10 प्रतिशत लेखक के एजेंट को जायेगा और लगभग आधी राशि करों में चली जायेगी. अंत में कुल मिलाकर 5 लाख डालर लेखक को प्राप्त होगा.

प्रकाशक को आशा है कि वह उपन्यास की एक करोड़ प्रतियां बेच लेगा. उसे 8-10 लाख डालर प्रचार पर भी व्यय करने होंगे. लेकिन यदि उपन्यास 'फ्लाप' हो गया तो?

इतनी ज्यादा कीमत पर नीलामियां पिछले 5-7 साल से ही हो रही हैं. पहले किताब औसत एक लाख डालर की बिक जाती थी. बहुत जल्द यह रकम 10 लाख पर आ गयी. 1974 में 'आल दि प्रेसीडेंट्स मैन' 10 लाख की बिकी थी. फिर 10 से 15 और 20 होते हुए अब शायद अगले साल की किताब 25 पर बिके.

'गॉडफादर' के प्रकाशन से पहले पुज़ो साहब के दो उपन्यास निकले और कुल आमदनी छह हजार डालर हुई. फाकामस्ती के दिन थे वे. पिछले दस साल में उन्होंने 60 लाख डालर कमा लिये हैं.

इन किताबों की 70 प्रतिशत खरीददार औरतें होती हैं.

यह तो हुई चटपटे किस्म के लोकप्रिय लेखकों की बात, परंतु अच्छे लेखक भी विदेशों में बहुत काफी छपते और पढ़े जाते हैं. इन्हीं दिनों फ्रैंज काफ्का जैसे गंभीर और जटिल लेखक के अमेरिकी पेपरबैक अधिकार 2 लाख से ज्यादा डालर में बिके. लेखक यदि जिंदा होता तो उसे यह सब देखकर बहुत मजा आता.

इसी तरह प्रसिद्ध जर्मन लेखक हायनरिख बॉएल की किताबें दुनिया की पैंतीस भाषाओं में पौने दो करोड़ के लगभग छप चुकी हैं. अब उनकी साठवीं वर्षगांठ के अवसर जर्मनी में उनका संपूर्ण कृतित्व दस खंडों में छापा जा रहा है. पांच खंड छप चुके हैं, शेष अगले वर्ष के आरंभ में प्रकाशित हो जायेंगे. इसके संपादक श्री बंर्ड बाल्ज़र हैं परंतु लेखक हर स्तर पर सहयोग दे रहे हैं. □

पास्तरनाक : कमज़ोर और बेवफ़ा

साहित्यकार दुनिया की नज़र... कुछ भी हों, अपनी पत्नी... प्रेमिका की नज़र अक्सर उनकी असलि... को पहचान लेती है. ओल्गा इविन्स्... नोबेल पुरस्कार प्राप्त रूसी लेखक बो... पास्तरनाक की प्रेमिका और मि... थीं. उन्होंने पास्तरनाक के साथ बि... अपने दिनों पर पांच सौ पृष्ठों की कि... लिखी है. नाम है 'ए कैप्टिव ऑव टा... पिछले ही दिनों प्रकाशित इस कि... में पास्तरनाक को एक कमज़ोर... बेवफ़ा चरित्र बताया गया है.

स्टालिन के जमाने में एक... मित्र लेखक मैंडेलस्टेम ने उन्हें... स्टालिन विरोधी कविता सुनायी... सड़क पर खड़े थे. कविता सु... पास्तरनाक इतने परेशान हुए कि... "मैंने यह कविता नहीं सुनी, न... यह सुनायी" स्टालिन ने जब मैंडेल... को पकड़ा तब उसने खुद पास्तर... को फोन करके अपने मित्र की... करने को कहा. पर पास्तरनाक... डरे हुए थे कि स्टालिन को ही क... पड़ा, "तुम अपने साथी की मदद... लायक नहीं हो."

नोबेल पुरस्कार मिलने के अ... पर भी पहले तो पास्तरनाक ने यह... कि मैं गोली खाने को भी तैयार हूं... वे इतने झुक गये कि सार्वजनिक... से चिट्ठियां प्रकाशित करके... माफियां मांग लीं.

सौंदर्य का प्रेम भी उनका अ... ही था. उनकी ही वजह से ओल्गा... यातना शिविरों में चार साल का... लौटने लगीं तो उन्होंने संदेश भिज... कि उनका सौंदर्य यदि इस बीच... गया हो तो वे न मिलें. संदेश ले जाने... स्वयं ओल्गा की लड़की ही... जिसने समझदारी से काम लेकर... उस समय मां को नहीं बताया... ने लिखा है कि पास्तरनाक ने... पत्नी को इसलिए छोड़ा क्योंकि... 'बूढ़े होने की गलती की.' ओल्गा... 'डॉ. जिवोगो' की नायिका लारा...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ्का की नयी किताब

फ्रेंज काफ्का ने कम ही लिखा और उनमें से अधिकांश, पचपन साल पहले हुई, उसकी मृत्यु के पश्चात् ही प्रकाशित हुआ, फिर भी इस शताब्दी के साहित्य की वह एक प्रमुख सत्ता माना जाता है. उसकी डायरियों, पत्रों और छिटपुट नोटों में भी गहरी रुचि ली जाती है. डायरियां तो उसकी पहले ही प्रकाशित हो गयी थीं और दो प्रेमिकाओं, फेलिस और मिलेना, को लिखे पत्रों के संग्रह भी (क्रमशः 1973 और 1953 में) प्रकाशित हो गये थे. अब मित्रों, परिवार के सदस्यों तथा संपादकों को लिखे गये पत्रों का, पांच सौ से अधिक पृष्ठों का संग्रह प्रकाशित हुआ है. इसका मूल्य जरूरत से ज्यादा ही लगता है: बीस से आधा पौंड कम, यानी करीब सवा तीन सौ रुपये.

इस तरह के सभी संग्रह काफ्का की रोगी मनःस्थिति तथा उसकी अपनी विशिष्ट अनुभूतियों को ही उजागर करते हैं — और इस दृष्टि से यह निस्संदेह विशिष्ट कृति है. पत्रों को काफ्का विशेष महत्त्व देता भी था क्योंकि उन्हींके माध्यम से वह अपनी बात ज्यादा सही ढंग से कह सकता था. उसके अनुसार पत्र 'समुद्र के दो किनारों की एक दूसरे तक पहुंचने की छटपटाहट हैं.'

काफ्का की दृष्टि में लेखक 'मानवता का बलि का बकरा' होता है लेकिन अंततः वही वास्तव में सही अर्थों में जीवित भी बचा रहता है. सही किताब उसकी नजर में वह है "जो भीतर जमे समुद्र को आरे की तरह चीर दे.' 'हमें ऐसी किताबें चाहिए जो गहराई से परेशान करें, जो महाविनाश की तरह हमें झकझोर दें."

काफ्का की अपनी किताबें ऐसी ही हैं—यूं वह उन्हें जला देने के पक्ष में था, परंतु जिन्हें उसका घनिष्ट मित्र मैक्स ब्रॉड हीरे जवाहर की तरह तब तक संजोये रहा जब तक वे प्रकाशित न हो गयीं. दरअसल मैक्स ब्रॉड के ही कारण काफ्का प्रसिद्ध हो सका. उसकी अपनी प्रेमिकाएं तो उसे समझ ही न सकीं —और एक ने तो उसके पत्र खासे दाम लेकर बेच भी दिये. □

दीवाने आम: दीवाने ख़ास

▣ दर्शन लाल

जान गयी. . .के मायने!

दर्शनलाल दीवानेख़ास में रोज़ की तरह आज भी बड़ी देर तक टेलीफोन की घंटी सुन रहा है. टेलीफोन के पास ही सलामत बाबू बैठे हैं. वे आज से नहीं, 31 साल से वहां बैठते आ रहे हैं. आखिर सलामत ने टेलीफोन की पुकार सुन ही ली. टेलीफोन से बात करते समय उसके चेहरे पर अचानक आत्मज्ञानी होने का भाव देखकर दर्शनलाल भौंचक्का हो गया है.

"ऐं! आज मंडे है! मुझे ध्यान ही नहीं रहा."

इस पर बाजू में बैठे सहायक ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की, "घंटे और मिनट से आपका सरोकार नहीं है, यह तो पूरा देश जानता है. कम से कम अपने सामने लगे कैलेंडर का तो लिहाज़ कर लिया करो सलामत भाई! 'आज मंडे है,' यह समाचार आपको तत्काल अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों को भेज देना चाहिए वरना आप तो मरते दम तक सलामत रहेंगे, पर हमारी खैर नहीं."

सलामत को सहायक की बात पट गयी. उसने तत्काल घर में फोन घुमाया.

"ये हिंदुस्तान है सलामत भाई! अंग्रेज़ों की चाकरी की आपने, फिर भी आपको इस टेलीफोन की माया समझ में नहीं आयी. यहां लाटरी लगने की गारंटी दी जा सकती है परंतु टेलीफोन की नहीं."

दर्शनलाल ने सहायक को झूठा पाया. टेलीफोन लग गया और फंस भी गया.

सलामत ने अपनी पत्नी को फोन से सविस्तार सूचित कर दिया कि 'आज मंडे है, और अंत में दोहराया "जान गयी."

"जान गयी!" शब्द सुनते ही दीवाने खास की सभा में बैठे शब्द-पारखी एक साथ सलामत-बाबू से पूछने लगे, "किसकी जान गयी? कैसे गयी?"

यह सवाल सलामत को बड़ा बुरा लगा. सालों से टेलीफोन में बात करने का 'विदाउट ब्रेक एक्सपीरियंस' होने का उसे बड़ा गर्व रहा है. उसने उसी दम शब्द-पारखियों को मुंह तोड़-जवाब दिया, "जान गयी के मायने हैं समझ गयी."

इस बहस में अचानक भाग लेते हुए एक नये सहायक ने कहा, "मैं समझा अम्मी-जान गयी!"

दीवाने खास में शास्त्रार्थ लंबा हो रहा था, तभी एक बूढ़े चपरासी ने गहरी नींद से उठकर शुभचिंतक के रूप में बीच में ही घोषणा की, "साहब! लंच के लिए देर हो रही है." □

गरीबी का भूगोल!

भारत और पाकिस्तान की सीमा पर दोनों देशों के सुरक्षादल के सिपाही बातचीत करने लगे. समस्या थी एक व्यक्ति को बिना पासपोर्ट के सीमा पार करने की अनुमति देने की. देशभक्ति का पालन-पोषण सिर्फ भूगोल करता है. 'बिना पासपोर्ट के प्रवेश निषेध' इस पर दोनों सिपाही एकमत थे.

दूसरे दिन वही दोनों सिपाही आपस में बातें करने लगे. एक बोला—"क्यों भाई! आपका इस तनख़्वाह से गुज़ारा चल जाता है?"

इसके उत्तर में दूसरा सिपाही हतप्रभ-सा हो गया. वह आत्मसमर्पण की स्थिति में था.

वह व्यक्ति, जिसे बिना पासपोर्ट के सीमा पार करने की अनुमति नहीं दी गयी थी, दूर खड़ा देख रहा था और सोच रहा था कि गरीबी भूगोल की परवाह किये बिना, किसी भी देश के संतरी को पासपोर्ट दिखाये बिना यात्रा कर सकती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम तौर से अपनी मौत के खौफनाक क्षणों की जानकारी किसी को नहीं होती. मगर जब किसी को निश्चित रूप से यह मालूम हो कि फलां समय उसकी जीवनलीला समाप्त कर दी जायेगी, तो उस शख्स की मनःस्थिति का अंदाज लगाना आसान नहीं रहता. तिस पर जब मौत का फैसला 'कुदरत' नहीं 'कानून' द्वारा किया जाता है, तो जिंदगी और मौत की ऊहापोह में उसे अपने चारों ओर घिरते हुए काले सन्नाटे का एहसास होने लगता है, और घड़ियाल की आवाज भी फांसी के तख्ते की 'खटाक' बन जाती है . . . . और ठंडी खामोशी में जीता, न जीता आदमी अपनी ही थरथराहटों की भयावहता में खो जाता है . . . . .

यह मौत का फरमान, चाहे कानूनी हो या राजनीतिक, हलाक होते हुए आदमी के दर्द को कोई और नाम नहीं दिया जा सकता——इसका रिश्ता किसी एक इंसान से कम, इनसानी ज़िंदगी से ज्यादा है. प्रस्तुत है, संभवतः पहली बार किसी की फांसी के वक्त उपस्थित पत्रकार की कलम के इन्हीं एहसासों से कानून और मुजरिम के बीच व्याप्त इंसानी जिंदगी की उहापोह से एक सीधा साक्षात्कार.

19 अक्टूबर को जब बैजू को पता चला कि राष्ट्रपति ने उसकी 'मर्सी-अपील' नामंजूर कर दी है, उसे एहसास हो गया था कि अब एक न एक दिन उसका गला फांसी के फंदे में जकड़कर झूल जाना है. परंतु किस दिन?. . . इसका उसे कोई अंदाज़ नहीं था.

25 अक्टूबर को उसे फांसी दिया जाना तय हुआ. आधी रात तक वह इस अचानक होने वाले हादसे से अनजान ही रहा.

अलस्सुबह ठीक 3 बजे मैं रायपुर सेंट्रल जेल के दरवाजे पर था. जेल अधीक्षक व जिला न्यायाधीश पंडितजी के साथ बैठे थे. तनावपूर्ण माहौल में कुछ औपचारिकताओं के बाद हम सब जेल के भीतर दाखिल हुए. हमारे साथ सिपाहियों का काफिला बंदूक व मशालें थामे चल रहा था. बूटों की आवाज़ों से हर बैरक की नींद टूट गयी. मगर हम उनमें से झांकती अनगिनत आंखों को अनदेखा करते हुए सीधे बैजू के बैरक की तरफ बढ़ते रहे.

बैरक पहले से ही खुला था. कुछ सिपाही गैस-बत्ती के साथ उसके पास तैनात थे. जेल अधीक्षक के कार्यालय से बैजू के बैरक तक का एक फर्लांग का फासला तय हुआ, मगर कोई किसीसे कुछ भी नहीं बोल सका. बैरक के पास सिपाहियों का काफिला रुका. बूटों की तेज आवाज़ें थम गयीं. और उसके स्थान पर मूरम पर पांव पड़ने से कसकसाहट होने लगी. पंडितजी के पीछे-पीछे मैं, जिला न्यायाधीश व जेल अधीक्षक सहित कुछ अन्य अधिकारी बैजू के पास गये.

. . . बेटा, राम-राम बोल!

पंडितजी की राम-राम का बैजू ने कोई जवाब नहीं दिया. न वह हम लोगों के आने पर खड़ा ही हुआ. इस वक्त उसे यह नहीं बताना पड़ा कि उसे अब फांसी के फंदे तक ले जाया जायेगा.

पंडितजी ने फिर राम-राम दुहराया लेकिन बैजू फिर चुप रहा. पंडितजी तुलसी के पत्ते बैजू को देते हुए बोले, "बेटा, राम राम बोल...!" उस क्षण बैजू फूट पड़ा, "अब का राम का नाम लेई महाराज, हम तो जात हन . . . बस हमार लइकन का दिखाय दो!"

यह उस बैजू की अंतिम इच्छा थी, जो अब कुछ देर का मेहमान था. बच्चों की बात आते ही जेल अधीक्षक लपक कर मुखातिब हुए, "भई, तुमसे हफ्ते भर से पूछ रहे हैं, किसीसे मिलना है क्या, पर तुमने तो कुछ नहीं बताया." बैजू बिना नज़र उठाये, बोला, "आप तो रिश्तेदारन का पूछत रहेव. हम किसी रिश्तेदारन से नहीं मिलव, सब दुश्मन हैं. हमार लइकन को दिखवा दो साहब!"

जेल अधीक्षक व अन्य जेल अधिकारी समझाने लगे कि उसने चूंकि अपने बच्चों का कोई पता ठिकाना नहीं बताया था और न ही उनकी कोई चर्चा की, इसलिए अब उनसे मिलना संभव नहीं होगा. इसलिए वह कुछ बोलें, पंडितजी श्लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फांसी !

रिश्ता इंसान से नहीं. . . इंसानियत से ज्यादा है !

▣ गिरिजा शंकर

पढ़ने लगे, "देखो बैजू, लोग तो पता नहीं किस हाल में मरते हैं, तुम तो पूरे होश-हवास में जा रहे हो, इसलिए भगवान का नाम लो और. . . !"

"होश में होयसे का फायदा?" बैजू बीच में ही बात काटते हुए बोला, "अपन लइकन को तो नहीं देख सकंय?"

पंडितजी गंगाजल निकाल कर बैजू को देने लगे. बैजू अब तक तुलसी-पत्र को अपनी हथेली पर खैनी की तरह मल रहा था. गंगाजल लेने से उसने साफ इंकार कर दिया, राम का नाम लेने-जैसा ही. बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर उसकी हथेली पर पंडित ने गंगाजल की कुछ बूंदें डालीं और बैजू गंगाजल में डूबे तुलसी-पत्र को कुनैन की गोली की तरह गटक गया!

अब तक घड़ी में 3-35 हो चुके थे. बैजू ही सबकी सोच का केंद्र बिंदु बना हुआ था. दीवाली के ठीक पहले की ठंडी रात, चांदनी होते हुए भी दहशतज़दा और अनजाने भयमिश्रित उस निस्तब्ध माहौल को बार-बार बैजू की पुकार बिखरा देती, "हमार लइकन को दिखा दो साहब. . . आप मन तो मालिक हव. . . जैसे आदेश हो-ही वैसे ही करबो लेकिन हमार लइकन का दिखाय दो!"

बैजू की इस चीत्कार का कोई जवाब किसी के पास नहीं था. बड़ी मुश्किल से आंखें ऊपर करते हुए बैजू का स्वर आतंक और करुणा उपजाता रहा, "साहब अपन लइकन का हम कन्हैया पाकर (कमर पर बिठाकर) खेलाय रहेव, गैया चराय रहे, उन कर दिखाय दो साहब!"

सभी असहाय थे. मैं गुमसुम-सा खड़ा रहा, कभी बैजू को तो कभी दूसरों को निहारते हुए. पंडितजी बराबर अपने प्रवचन के हिस्से दुहराते रहे, जिसका कोई असर बैजू पर नहीं हुआ.

लेकिन लरकन का दिखाय तो देव!

समय सरकता जा रहा था. 4 बजने को थे. बस, आधे घंटे बाद फांसी होने वाली थी. बैजू को समझाने के सारे प्रयास असफल हो चुके थे. जबकि अपने बच्चों से मिलने की उसकी बेबस पुकार बरकरार थी. आखिरकार जेल अधिकारियों ने संवाद की स्थिति को समाप्त मानते हुए, सीधे-सीधे, कानूनी औपचारिकताएं पूरी करनी शुरू कर दीं. एक जेल अधिकारी ने न्यायालय के फैसले को पढ़कर सुनाया कि . . . बैजू को फांसी की सजा सुनायी जाती है, तथा बैजू की मर्सी-अपील राष्ट्रपति व राज्यपाल ने मंजूर नहीं की. फिर बैजू की वसीयत भी पढ़ी गयी, जिसके तहत उसने अपनी सारी जायदाद बच्चों के नाम की थी.

इन बयानों पर कैदी की सहमति होना अनिवार्य है, मगर बैजू खामोश, सिर झुकाये बैठा रहा. वसीयत पढ़कर न्यायाधीश ने बैजू की सहमति मांगी तो वह बिफर पड़ा, "जमीन-जायदाद तो सब लिख देहिं सरकार लेकिन लइकन का दिखाय तो देव?"

बात टालने की गरज से जेल अधीक्षक ने बैजू को सिगरेट दी. अनिच्छा के साथ लेकिन निरपेक्ष भाव से बैजू ने सिगरेट ले ली. वह सिगरेट सुलगाने लगा तो उसके हाथ बुरी तरह कांप रहे थे. उन कांपते हाथों को देखकर मैं घबरा-सा गया. फांसी शब्द की भयंकरता व आतंक के एहसास से यह मेरा पहला सीधा साक्षात्कार था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये वस्त्र : अंतिम स्नान

बैजू के नहाने को पानी, खाने को मिठाई व पहनने को नये कपड़े (लट्ठे की कुरतानुमा बनियान व कच्छानुमा पतलून) तैयार थे. मगर बैजू, न तो नहाया और न ही उसने कुछ खाया! अलबत्ता काफी मनाने के बाद वह नये कपड़े पहनने को राजी हो गया. हम लोग बैरक से बाहर निकल गये.

बैजू का गुनाह चार व्यक्तियों की निर्मम हत्या बताया गया था. ये हत्याएं उसने मात्र ढाई-तीन हज़ार के सामान के वास्ते की थीं. वह एक संतानहीन परिवार में ओझा बनकर गया और बोला कि तंत्र-मंत्र के ज़रिये वह उन्हें संतान दिलवायेगा. फिर परिवार के प्रमुख व छोटी पत्नी को बारी-बारी से नाले के पास ले जाकर उनकी हत्या कर दी. लौटकर उसके दस वर्षीय भतीजे व दादी का भी काम तमाम कर दिया. उसके इस अपराध में सत्र-न्यायाधीश ने फांसी की सज़ा सुनायी, जो आखीर तक बदली नहीं जा सकी.

उसे फांसी लगने में अब केवल आधा घंटा बाकी था. जेल कर्मचारियों ने बैजू के दोनों हाथों को पीठ के पीछे लाकर हथकड़ी लगा दी. फिर ऊपर बांह तक मोटी रस्सी भी कस दी. ताकि वह हिल तक न सके. बैजू प्रतिरोध करता रहा. मगर अब उसकी किसी भी तरह की हरकत का कोई अर्थ नहीं रह गया था. कानून अपनी जगह अटल है. बैजू के चेहरे पर सिर को ढांपते हुए काला कनटोप भी चढ़ा दिया गया. फिर उसकी प्रार्थना पर सभी को रहम आ गया और फांसी के तख्ते पर पहुंचने तक के लिए कनटोप उतार दिया गया.

दो सिपाही दोनों ओर से बैजू को थामे बैरक से बाहर निकले, जहां पुलिस गारद दो कतारों में खड़ी हुई थी. यहां से काफिला रवाना हुआ. . .उस खुले मैदान की ओर जहां फांसी का फंदा बैजू का इंतज़ार कर रहा था. दोनों तरफ पुलिस वाले, उन दोनों के बीच हम लोग बैजू के साथ चले जा रहे थे. बैजू हालांकि बराबर चलता रहा लेकिन चेहरा खुला होने पर भी उसका मुंह ऊपर नहीं उठा.

मैंने उसके झुके हुए चेहरे को ध्यान से देखने की कोशिश की, किंतु वह इतना तटस्थ था कि किसी तरह का कोई भी भाव उसके चेहरे पर नहीं उभर रहा था. भले ही बैजू मानसिक रूप से फांसी के वास्ते तैयार रहा हो लेकिन क्या वह इन प्रक्रियाओं को झेलने के लिए भी तैयार था, जिनसे गुज़र उसे फांसी पर झूलना था?

जेल की सभी बैरकों को अपने में समाये एक मोटी-ऊंची दीवार है. उसके पार भी एक ऊंची चट्टानी दीवार खड़ी है. इन दीवारों के बीच खुला मैदान है, जहां फांसी दी जाती है. पहली दीवार को पार करके हम मैदान में पहुंचे, लगभग एक फलांग की दूरी तय करते हुए. बदन में समाती ठंडी हवाओं की सिहरन चंद मिनटों बाद के हादसे की कल्पना से ही बढ़ रही थी. सभी की ज़ुबान पर चुप्पी चिपक-सी गयी थी.

मैदान में पहुंचते ही सामने एक ऊंचे प्लेटफार्म पर फांसी के दो फंदे लगे हुए थे. प्लेटफार्म के ऊपर लोहे के मजबूत रॉड पर मोटी रस्सी झूल रही थी. नीचे लकड़ी का तख्ता और उसके नीचे लगभग दो मीटर गहरा पक्का गड्ढा, जिसका मुंह सामने की ओर से खुला था.

हम उसी ओर खड़े थे. प्लेटफार्म पर लगे रॉड के पास ही एक लीवर. . .जिसे खींचते ही लकड़ी का तख्ता हट जायेगा. . बैजू एक झटके से नीचे गिरेगा. . . उसके गले में डाली गयी रस्सी कसी जायेगी. . . .और देखते ही देखते उसकी जीवन लीला समाप्त हो जायेगी !

दो कैदी व कुछ जेल कर्मचारी टार्च, गैस-बत्ती के साथ बैजू को प्लेटफार्म पर ले गये. प्रतिरोध के बावजूद उसका मुंह काले कनटोपे से ढांप दिया गया. हाथ तो उसके पहले से ही बंधे थे, पैरों को भी पिंडलियों से लेकर घुटनों तक रस्सी से जकड़ दिया गया.

आदमी नहीं, लकड़ी का टुकड़ा!

बैजू अब कोई ज़िंदा आदमी नहीं बल्कि मोटी लकड़ी का टुकड़ा लग रहा था. उसके गले में रॉड से लटकती हुई मोटी रस्सी का फंदा डाल दिया गया और पीतल की कुंडी कस दी गयी. टार्च की रोशनी से करीब झांककर देखा गया कि रस्सी ठीक से कसी हुई है या ... संतुष्ट होने पर सभी नीचे उतर ... सिवा दो कैदियों के जो उम्र कैद की ... भुगत रहे थे. वैसे लीवर खींचने ... काम प्रायः वेतन भोगी जल्लाद ... है, किंतु जेल में जल्लाद न होने के ... कैदियों को ही यह काम करना पड़ता ...

फंदे में झूलती ज़िंदगी

चार बजकर सत्ताईस मिनट! ... सांस रोके खड़े हैं. सबकी ... बैजू की ओर लगी हुई ... अब अपनी मौत की ... गिनने की स्थिति में भी नहीं है.

जेल अधीक्षक ने इशारा ... कैदियों ने फटाक से लीवर खींचा ... दूसरे ही क्षण बैजू की लाश झूल ... लीवर खींचते ही बैजू पता नहीं ... ज़ोर से चीखा होगा लेकिन उसमें ... तीन मीटर दूर खड़े हम लोगों तक ... हल्की-सी आवाज़ ही आयी, ... भी पतली. . . छनाक! यकीन नहीं हो ... था कि चंद मिनट पहले अपने बच्चों ... देखने के वास्ते व्याकुल बैजू ज़िंदा ... रहा और उसकी लाश झूल रही है!

सांस और खून इतनी तेज़ी से च... थे कि मुझे लगा कि किसी भी क्षण ... सांस रुक जायेगी. बदन सिहर ... आतंक और बेचारगी इस कदर ... थे कि सूनी निगाहों से सब कुछ ... के आलावा अब बचा ही क्या था ...

जेल अधीक्षक, डॉक्टर व न्याया... अपने-अपने पिछले अनुभवों की ... कर रहे थे. सभी इतने सामान्य ... मानो कुछ हुआ ही न हो, दीवारों ... तरह तटस्थ! फिर डॉक्टर साहब ... की लाश की तरफ बढ़े. उसके सीने ... स्टेथोस्कोप लगाकर देखा, धड़कनें ... रही थीं. कुछ देर और इंतज़ार ... पड़ेगा, जब तक कि लाश शून्य न हो ... फांसी के बाद भी कुछ देर तक ... चलती रहती हैं. फंदा कसते ही ... और हृदय का संबंध टूट जाता है ... इसके साथ धड़कनें बंद नहीं ...

चार-चालीस हो चुके थे. डॉक्टर ... फिर गये लाश के पास. स्टेथोस्कोप ... सीने पर. अब लाश की धड़कनें थम ... थीं. लाश को किसी का इंतज़ार न ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका तिकोन

सिम्मी हर्षिता

संस्था की बैठक समाप्त होने को थी और चर्चा मुख्य विषय से हट कर व्यक्तियों के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगी थी. मेरे पास जैसे किसी से कुछ भी कहने-बांटने को न था. बोलने की इच्छा या जरूरत या हालात न होने पर व्यक्ति भले ही मौन हो ले—अपने को निर्जन बना ले—अनसुना कर ले—पर अपने आस-पास को सुनने से वह कैसे इंकार कर सकता है! सुनाहट की आंतरिक सुगबुगाहट से भी वह कैसे बच सकता है! मेरे एक ओर खाली पड़े कानों में मेज के पार बैठे व्यक्तियों की बातचीत घुसपैठ करने लगी थी, "..आजकल काबुल बीमार है."

सुनने वाले व्यक्ति के स्वर में अब अविश्वास उभरा तो कहने वाले ने दोबारा वाक्य का रूप बदलकर बात को नया वज़न और असर दिया, "हां-हां, सच बीमार है! फलेरिया-मलेरिया और न जाने क्या-क्या हो गया है उसे! महीना होने को है चारपाई पर पड़े हुए. बेहद कमजोर हो गया है! मैं उसके पड़ोस में ही तो रहता हूं. . . "

"हुंऽ, इसी लिए उसका कई दिनों से फोन नहीं आया!" काबुल और उसका फोन जैसे एक-दूसरे के पर्याय हों और एक की चर्चा दूसरे के बिना अधूरी हो.

मेरे कानों ने जब काबुल के बारे में कुछ सुना है और मन को कुछ बताया है तो वह कैसे चुप बैठा रह सकता है! मन में विचारों की लहरें उठने लगती हैं और

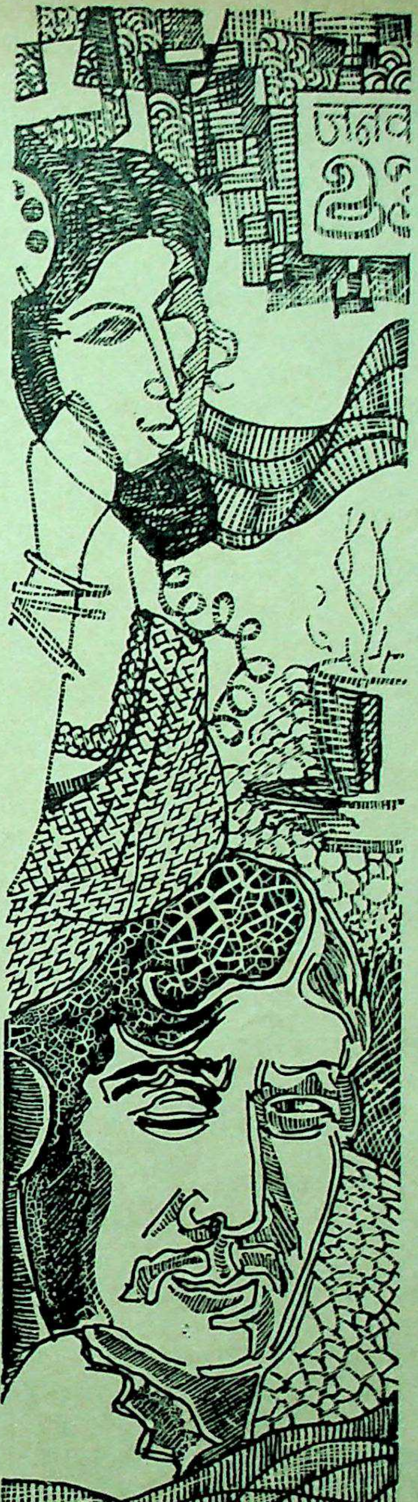

स्मृति के घर में बातों का एक सिलसिला शुरू हो जाता है—'ओह, काबुल बीमार है. इसी लिए उसका महीने भर से फोन नहीं आया . . .' सिलसिले की शुरुआत दुःख से होती है और एक बचाव के-से भाव तक जा पहुंचती है—'उसने फोन नहीं किया यानी परेशान नहीं किया! यानी अपनी सभ्यता-सज्जनता का परिचय दिया! तभी मैं सोचूं कि इतना धैर्य, इतनी समझदारी यानी परिपक्वता, इतनी तटस्थता और अलगाव या एक पुरुष का खूबसूरत अहमभाव उसमें कहां से आ गया रातों रात कि महीने भर से ऊपर फोन न करे?' असंभव! एक अविश्वसनीय आश्चर्य!

उसके फोन का अर्थ है—आध घंटा चोंगा हाथ में उठाये, कान से लगाये खड़े रहने की सज़ा! यदि गर्मी का मौसम है तो पसीना बह जाना और यदि सर्दी है तो सामने पड़ी चाय की भाप पूरी तरह से उड़ जाना. एक सीमा के बाद जी हां, जी नहीं या कोई उखड़ा-पुखड़ा टालू उत्तर दे देना या न देना. फोन बंद करने के अंदाज में मेरा कुछ कहना और उसका बातों की लस्सी में कुछ और पानी डाल देना—'हां, शिलाजीत जीत जी, तो मैं कह रहा था कि. . . ' यह अच्छा ही है कि दूरभाष अभी दूरदर्शन नहीं बना और उसके साथ स्वर से ही सभ्यता का निवाह हो जाता है.

उसके फोन का अर्थ है—बार-बार इस या उस बहाने से अपने दिल की चिड़िया को अपने पिलपिले-फटे-पुराने-उखड़े राकेट से मेरे मन के कोर्ट में फेंकना और मेरा बार-बार उसे उठाकर उसके ही कोर्ट में डाल देना या बेध्याने इधर-उधर गिरे-पड़े रहने देना और उसका मायूस होकर उसे उठाकर अपने पास रख लेना, किसी दूसरे वक्त के लिए.

काबुल कितनी ही तरह से मेरी जिंदगी का रास्ता काटने का यत्न करता है. कितनी ही तरह के संबंधों की अर्गला खोलने का यत्न करता है. उसकी बातों में रफू और सिलावट-मिलावट साफ़ दिखाई देती रहती है.

"क्या आपके पास फलां-फलां किताबें हैं?" पुस्तकों का सदियों पुराना सदुपयोग होने पर भी कहना पड़ता है, "नहीं जी."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर कौन-कौन-सी किताबें हैं आपके पास, मुझे बताएं. शायद उनमें से कोई मेरे काम की हो."

"किताबें खरीदने का शौक तो है मुझे, पर उनमें शायद ही आपके विषय या काम की कोई हो."

काबुल का स्वर फिर मायूस हो जाता है. जैसे हवा निकल गयी हो. वह फिर धैर्य के पंप से उसमें हवा भरता है और नये ढंग से बात शुरू करता है, "मैंने एक योजना बनायी है. यदि आप चाहें तो सफल हो सकती है."

"कौन-सी योजना?"

"मैं चाहता हूं, हम दोनों मिलकर एक नर्सरी स्कूल खोलें. इसमें मेहनत ज़्यादा नहीं और पैसा बहुत है. इसी लिए जगह-जगह ऐसे स्कूल खुले हुए हैं. आजकल सोचने लगा हूं, संसार में इतना रूप, इतना धन, इतना यश बिखरा हुआ है, फिर हम भी क्यों न उसे प्राप्त करें!"

"क्यों नहीं? पर मेरी इस काम में रुचि नहीं है. अपना स्कूल खोलने का अर्थ है बहुत-सा वक्त, बहुत-से झंझट, दिन-रात उसी में लगे रहो और अपनी व्यक्तिगत ज़िंदगी, रुचियां खत्म."

"क्यों? बच्चे सुबह आयेंगे, बारह-एक तक चले जायेंगे. फिर आप स्वतंत्र. जो चाहें करें."

"क्या बच्चों के लौट जाने के बाद स्कूल का काम खत्म हो जाता है? हज़ार झंझट फिर भी लगे रहते हैं. और फिर मेरी इस काम में रुचि भी नहीं."

"अच्छा! यदि आपका सहयोग नहीं तो फिर यह काम भी शुरू नहीं किया जा सकता." उसका स्वर बुझ जाता है. मैं उसे लौ छुआते हुए कहती हूं, "क्यों नहीं? आपके आस-पास बहुत से ऐसे लोग होंगे जो इसे करना चाहेंगे."

"नहीं, इसका मतलब यह योजना भी खत्म. मैं हर रोज़ कई योजनाएं बनाता हूं और कई तोड़ता हूं." एक धनी हताशा का धुआं उसके स्वर में सफर करता हुआ इस ओर आ जाता है.

फिर किसी दिन, "क्यों न मैं और आप मिलकर एक पत्रिका निकालें?"

"इस काम में भी मेरी रुचि नहीं. बड़े झंझट हैं इसमें भी."

"अच्छा! इसका मतलब यह योजना भी खत्म. फिर आप ही बताइए कोई योजना, जिसे शुरू किया जाये."

"मेरे मन में कोई योजना है ही नहीं."

एकाएक उधर से एक फ़िकरा इधर आ जाता है, "आजकल की लड़कियों को शीशे में उतारना आसान नहीं."

और बेध्याने ही इस ओर से हंसी में भीगा एक 'हूं ऽ!' फोन के उस पार चला जाता है.

मेरी हंसी में उसे एक खिड़की खुलती नज़र आती है जिसमें से झट से झांककर वह कहता है, "आप मुझे कॉफी कब पिला रही हैं अशोका होटल में? मंद संगीत की ध्वनि और चंद्र-रोशनी! कितना सुंदर और मोहक वातावरण होता है वहां!"

"हां, मुझे सब काम आपसे पूछकर, आपकी सलाह से, आपकी अनुमति से, आपकी इच्छा से और आपकी ज़रूरत के अनुसार ही तो करने होंगे!" मैं उस खिड़की को पट से बंद करते हुए कहती हूं. पर मेरे इस वाक्य के दौरान फोन का गला गरारे करने लगता है. उसके असहयोगी रवैये के कारण काबुल को मेरा यह तीखा स्वर स्पष्ट सुनाई नहीं देता. वह पूछ[illegible] "आपने क्या कहा था?"

"कुछ नहीं. मैं कह रही थी कि आपकी कार (यानी [illegible] पिताजी की कार) जिसे कोई चोर रात को ले गया था, [illegible] कि नहीं?"

वह गंभीर उदास स्वर में कहता है, "नहीं जी, अभी [illegible] पता नहीं चला. यदि चोर मुझे मिले तो मैं उससे पू[illegible] कोई चीज़ चुराने से पहले उसे यह तो सोचना चाहिए कि [illegible] दूसरे को कितनी परेशानी होगी."

"यदि चोर इस सोच-विचार में पड़ गया तो वह [illegible] कैसे कर पायेगा? उसे तो फिर अपने धंधे से हाथ धोना पड़े[illegible]"

"पर देखिए न, कितनी परेशानी है हमें! चोर कार मे[illegible] करे और हम बस में धक्के खायें! अब उससे पूछिए ज़रा कि [illegible] कार हमने तुम्हारे लिए खरीदी थी!"

▣

ऐसी पहेली किस काम की जिसका उत्तर पहले से ही [illegible] हो या सुनते ही सूझ जाये? क्या घटित होना चाहता है [illegible] क्या होना चाहिए—जब यह साफ समझ में आ जाये तो [illegible] गणित बन जाता है. इसी लिए एक दिन मैंने हिसाबी अं[illegible] में कहा, "आप इतने लंबे-लंबे फोन करते हैं, क्या थकते नहीं[illegible]"

वह ठहाका मारकर हंस देता है, "इसका मतलब [illegible] आपको काफी उबाता हूं."

"नहीं, यह बात नहीं, (बात वास्तव में यह है कि तुम [illegible] ही मुझ पर इतनी फोनी-कॉल खर्च कर रहे हो. मुझे इस [illegible] पर दुःख और दोषबोध होता है. तुम आकाशवृत्ति पर जीते [illegible] और उसमें आमदनी की संभावना इतनी कम नज़र आती [illegible] कि तुम अपने जीवन की सारी जवाबदेही अपने कंधों पर [illegible] हुए फोन की सुविधा को यूं लापरवाही से भोग सको. और [illegible] कोई दूसरा इस बोझ को उठाता है तो कितना अन्याय है [illegible] प्रति!) आपके फोन के बिल का भुगतान कौन करता है? आ[illegible] पिता जी क्या करते हैं?" मैं एकाएक पूछ बैठती हूं.

वह कोई उत्तर न देकर हंसकर प्रश्न को अपने सामने [illegible] परे सरका देता है. शायद मुझे ऐसा आयकर विभाग का [illegible] सवाल नहीं करना चाहिए था. उसके जीवन की घर बैठी-एक[illegible] एकाकी-काग़ज़ी-किताबी-कलमी दिनचर्या में संभवतः फोन [illegible] साथ ही उसके लिए मानवीय संबंधों का, दिलबहलाव का, [illegible] मिटाने का तथा काम-काज का माध्यम है. उसके परिचितों [illegible] बातचीत से ऐसा लगता है जैसे उसने हर एक को फोन [illegible] का एक न एक दिन और वक्त निश्चित कर रखा है. दूसरे [illegible] लिए यह परेशानी हो सकती है—किसी का पीछे खड़ा होना [illegible] पर उसके लिए तो शायद यह एक गंभीर आवश्यकता है.

एक दिन काबुल एक अत्यंत जटिल समस्या मेरे सा[illegible] रखता है, "इधर आजकल मुझे रात को नींद नहीं आती."

"सुबह लंबी सैर को जाया कीजिए."

वह हंस देता है, जैसे मैंने कोई गहरा मज़ाक कर दिया [illegible]

"इस वक्त मेरे चारों ओर किताबें और अखबार [illegible] हुए हैं. कई दिन हो गये बाहर निकले, धरती और आका[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग देखें."

"इसीलिए सुबह-शाम की सैर आपके लिए बहुत जरूरी है." वह फिर हंस देता है.

"आप मुझे राय दें कि मैं इस विषय पर अखबार में लिखूं या न लिखूं. आपकी राय पर मुझे विश्वास है कि वह अवश्य ठीक होगी. ऐसा न हो कि मैं लिखूं और विरोध का एक बवंडर मेरे चारों ओर खड़ा हो जाये."

"पर उससे आपका नाम तो हो ही जायेगा!"

"वह तो ठीक है. हर व्यक्ति को अपनी मूर्ति स्थापित करने के लिए एक चबूतरा चाहिए और जब तक हम किसी दूसरे की मूर्ति गिरायेंगे नहीं, तब तक हम अपनी मूर्ति स्थापित नहीं कर सकते. पर मैं विरोध और निंदा नहीं सह सकता. प्रशंसा वाला यश ही मुझे प्रिय है."

मेरे अगले सुझाव पर वह विशेषण जड़ते हुए कहता है, "शिलाजीत जी, आप बहुत अच्छी हैं!" वह इंसान अच्छा कैसे हो सकता है जो मन में कुछ और बोता है और मुख से कुछ और कातता है?

"यह आपका भ्रम है. वास्तव में इंसान जो कुछ होता है, जो कुछ स्वयं अपने बारे में सोचता-समझता और जानता है, यदि वही दूसरे भी उसके बारे में कहने लगें तो दुनिया कितनी नीरस हो जाये. जो एक भ्रम का रंग है, वही तो दुनिया का गुरुत्वाकर्षण है—वही तो उसका सम्मोहन है".

"आप ठीक कहती हैं."

▣

उसके शब्दों में मेरा हमेशा ठीक होना, उसका मेरे प्रति यह विश्वास और वक्त-वक्त पर दिये गये विशेषण तथा यह वाक्य कि 'मैं आपका बहुत सम्मान करता हूं' मुझे मुखर रूप से दो-टूक और ऊबड़-खाबड़ होने से बरजते रहते हैं. कुछ कड़वा कह कर या स्पष्ट बेरुखी दिखाकर उसकी राय में अपने को 'बुरा' बनाने और अपनी राय में अपने को 'असभ्य' बनाने का जी नहीं चाहता. उसका शब्दों द्वारा दिया गया विश्वास, आदर और महत्व—उसका कायरपन और नासमझी—दुनिया के प्रति उसका गुस्सा और शिकायती भाव—उसका कुंठित मन और झक्कीपन तथा अंधाधुंध अपनी ही हांके जाना मुझे उसकी ज़रूरत के अनुरूप सभ्य और अच्छा बने रहने—यानी धैर्यपूर्वक मौन और प्रतिक्रियाविहीन बने रहने को जैसे विवश करते रहते हैं. इसी लिए सब कुछ मन के ऊपर से बह जाने देती हूं. उसके ऐंडे-बेंडे शब्दों को—उसके बड़बोलेपन को एक कान से सुनकर दूसरे से बाहर निकल जाने देती हूं. जैसे कि राह चलते किसी लाउडस्पीकर से या किन्हीं अजनबी व्यक्तियों की बातचीत के कुछ अधूरे-पूरे शब्द कान में लुढ़क गये हों. उसके अटपटे यथार्थ से सीधे टकराने के बदले मैंने दार्शनिकता और लापरवाह भाव का—एक अनसुनेपन का आसान पल्लू पकड़ लिया है और सोच लिया है—शब्दों की ही तो यह दुनिया है—न चाहने पर भी, न ज़रूरत होने पर भी शब्द सुनाई देते रहते हैं—अब कौन हर शब्द और हर व्यक्ति को लेकर लड़े-झगड़े और माथापच्ची करे? संबंधों की सड़क पर बिना आगे-पीछे, दायें-बायें देखे शब्दों की गाड़ी घसीटे जाना उसका स्वभाव ही है जैसे. ऐसी-वैसी बातें करना तो उसकी आदत ही है. शायद इसे वह अपनी बहादुरी ही समझता हो या कोई ऐसा गुण जिसका मुझे पता नहीं. मुझे तो ऐसा लगता है जैसे वह स्वयं भी अपने शब्दों के किसी अर्थ या भाव की गंभीरता का जानकार नहीं है. वह है ही ऐसा. इसमें मेरी वजह से या मुझे लेकर या केवल मेरे लिए ही कुछ खास नहीं है. उसका यह सब किसी के लिए भी हो सकता है—होता है. काबुल के लिए एक या दूसरी जान-पहचान में कोई फ़र्क नहीं होता. न जाने कितने ही कांता-नाम उसने एक साथ पकड़े हुए हैं, इस आशा और यत्न के साथ कि कहीं न कहीं उसे मनचाही सफलता मिलेगी ही. वर्षों बाद विदेश से लौटने के बाद वह जिन कामों में सरगर्मी से लगा हुआ है उनमें से एक काम यह भी है. उसके फोन का नंबर सब जगह चक्कर काटता रहता है. उसने अपने को एक खीज पैदा करने वाला दयनीय मज़ाक बना लिया है—संबंधों को खालाजी का घर—भावना को हर जगह फिट हो जाने वाला पुर्जा और शब्दों को हरजाई—सबके लिए एक जैसे शब्द—एक जैसे वाक्य.

मैं सोचती हूं उसे किसी न किसी नौकरी की बंदिश पकड़ लेनी चाहिए. नौकरी बांधती तो है व्यक्ति की मनचाही वक्त की आज़ादी को, पर साथ ही शायद एक संतुलन भी देती है—शायद एक सुरक्षा भी. पर यह भी तो हो सकता है कि जैसे मनचाहे ढंग के रिश्ते वह नहीं फंसा पाता, उसी तरह मनचाही नौकरी भी न पा सका हो. कभी-कभी जीवन में दुर्घटनाओं का एक सिल-सिला चल पड़ता है. उसकी आकांक्षाओं का तिकोन कोई छोटा-मोटा नहीं है. पहले वह निर्यात हुआ था और अब वह आयातित माल है जिस पर भारी भरकम चुंगी लगती है.

▣

काबुल की फोनी बातों से शुरू-शुरू में लगता है जैसे वह बहुत भोला, सीधा-सरल तथा अनजान है. पर वास्तव में वह उस कछुए की तरह है जिसका मुंह, हाथ-पांव बड़े नन्हे-से, कोमल-से होते हैं, पर पीठ पत्थर-सी कठोर होती है और उसके नीचे सब कुछ दबा-ढका रहता है हिफाज़त से. काबुल हर नये परिचय को हाथों-हाथ लेता है और कुछ सार्थक संभावनाओं के प्रति पहले क्षण से ही आश्वस्त हो जाता है और इसी लिए हावी भी और कुछ बदहवास भी. वह हर परिचय को ठेकेदारी या सरकारी तरीके से शुरू करता है जैसे कि झटपट योजना का खाका अपने प्रयोजन के कागज़ पर खींचना और फिर फटाफट दूसरों की ज़िंदगी की ज़मीन पर मनचाहे ढंग से उसे लागू करने में जुट जाना.

अपरिचय के उन दिनों में वह किसी गंभीर वैचारिक पहाड़ी पर बैठकर बातचीत किया करता था जिस पर से एक ओर तो मेरी प्रशंसा का झरना झरता रहता, दूसरी ओर से सिद्धांतों, आदर्शों, पुस्तकों, वादों की गंभीर हवा बहती रहती और तीसरी ओर से देश की शोचनीय सामाजिक-राजनीतिक-साहित्यिक स्थितियों की आलोचना, आक्रोश और विरोध का लावा उफनता रहता. उसके वजनी शब्दों की किरणों से वह लावा चमककर चकाचौंध पैदा करता रहता. मुझे ऐसा आकाशीय आभास होता जैसे यह कोई बादल हो, जिसकी सोच का प्रत्येक कण केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे के लिए हो. मेरा मन उसमें रुचि लेने लगा था—प्रभावित होकर सोचने लगा था—यह व्यक्ति कितना मौलिक, कितना जागरूक, कितना अनुभवी, कितना गहरा, कितना प्रतिभाशाली, कितना समझदार, पर कुछ सनकी-सा है! यह व्यक्ति किसी भी क्षेत्र की वक्रता को चुपचाप स्वीकार नहीं करना चाहता. हर चीज़ की वर्षों पुरानी मैली परतें और सलवटें हटा देना चाहता है. मेरा दिमाग उसकी बातों पर ध्यान देने लगा था और अपनी सामर्थ्य के अनुसार तर्क-वितर्क भी करने लगा था. बहस में उलझने लगा था. सच पूछो तो उसकी दी प्रशंसा ने ही जैसे मेरे स्वभाव के विपरीत मेरी ज़बान को चलना सिखा दिया. मेरा मन उसके फोन का झीना-सा इंतज़ार करने लगा था. मेरे स्वर में इस उलझाव और इंतज़ार से उत्पन्न उत्साह और खुशी तथा उसमें मेरी रुचि का नन्हा-सा पड़ाव आते ही उसने अपने शब्दों की गाड़ी धीरे से बायीं ओर मोड़ दी. उसका वह सारा बौद्धिक खेल दिमाग की चोटी से उतरकर उसके दिल की बासी तलहटी में सरक आया था और सांकेकित भाषा में बोलने लगा था.

▣

सोचा था, बोलते-बोलते थक कर आखिरकार कभी तो वह चुप हो जायेगा, पर गड़बड़ यह हुई कि जिस तरह मैं उसके शब्दों की उपेक्षा कर जाती हूं, वह मेरे मौन उदासीन भाव की उपेक्षा कर जाता है. इसका नतीजा यह हुआ है कि उसके शब्दों का रंग धीरे-धीरे गाढ़ा और मुखर होने लगा है. उस एक दिन किसी के घरेलू उत्सव में अचानक काबुल दिखाई दे गया था और फिर सुनाई भी, "आप बहुत खोयी-खोयी और बिखरी-बिखरी नज़र आ रही हैं!" उसके हिसाब से मेरे साथ अब तक ऐसा हो जाना चाहिए. आखिरकार उसके इतने दूरभाषी संकेतों का कम से कम इतना असर—इतना प्रतिफलन तो आना ही चाहिए.

"मैं तो बिल्कुल ठीक हूं. पर देखती हूं, लोगों को मेरी बहुत फ़िक्र है."

"कई दिनों से आप दिखाई नहीं दीं? फोन पर भी नहीं मिलीं?"

"बीमार थी मैं."

"आपमें और अधिक ताज़गी और शायस्तगी आ गयी है. यदि बीमारी का यह नतीजा है तो सभी को बीमार होना चाहिए." कायदे से शर्माने, गर्वाने, मुस्काने के बदले मेरा चेहरा जैसे बहरा बन जाता है.

"चाय नहीं पी रहीं आप? अरे, पी लीजिए! आपकी त्वचा को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा."

मन से चलकर त्वचा की दलदल तक जा पहुंचे उसके शब्दों के नये कदम से मैं चौंक उठी थी. आसपास बैठे लोग भी चौंकते हैं, मुस्कुराते हैं, त्वचा की ओर निगाह फेंकते हैं. मैं शून्यभाव से सामने के शून्य को देखने लगती हूं. मैं शून्य की धार और अनसुनेपन से उसके शब्दों की धार को काट देना चाहती हूं.

फिर वापसी में एक सवाल उसका, "शिलाजीत जी, क्या आपके पास कार है?"

"है तो, पर वह घर पड़ी है. मुझे चलानी जो नहीं आती."

और फिर आसपास का मुस्कराना.

फिर पता चलता रहता था—काबुल का फोन आया था या आया था. उसने कहा है कि मैं बाहर से लौटूं तो फोन कर...

महीनों गुज़र गये थे. एक दिन लौटती हूं तो सूचना मिल... है—किन्हीं डॉक्टर धीरेंद्र का फोन आया था. उन्होंने... दिया है कि फोन कर लूं. मैं सोचती हूं, ये डॉक्टर धीरेंद्र कौन हैं... किस नये नाम ने मुझे याद किया? नाम के भारीपन से प्रभावि... होकर नंबर घुमाती हूं. उस ओर से किसी स्त्री की आवाज़... आती है. मैं डॉक्टर धीरेंद्र के बारे में पूछती हूं. वह गुप्तचर की... तरह मेरे बारे में पूछती है, "आप कौन बोल रही हैं?"

न चाहते हुए भी ठंडे भाव से मैं नाम बता देती... फिर पूछती हूं, "क्या डॉक्टर धीरेंद्र हैं?"

"यहां तो कोई डॉक्टर धीरेंद्र नहीं रहते?"

"अच्छा! क्या यही है आपका नंबर?"

"हां, नंबर तो यही है."

"अच्छा! उन्होंने कहा था कि मैं इस नंबर पर फोन कर लूं..."

तभी एकाएक चोंगा दूसरे हाथ में चला जाता है, "शिलाजीत जी, नमस्कार! मैंने ही फोन किया था. मैंने सोचा, आप तो फोन करती नहीं, फोन पर मिलती नहीं, कम से कम शायद इस तरह से आप फोन करें."

वाक्य का यह रूप जैसे वहां उपस्थित उस स्त्री को अच्छा नहीं लगा. तभी काबुल के इसरार-आग्रह करते से शब्द फोन पर सुनाई देते हैं, "अरे, बैठो न! जा रही हो?"

ओह! शायद यह काबुल की पत्नी है. फिर बीच में उसका किसी को वरजता स्वर सुनाई पड़ता है, "नहीं, मत छेड़ो... हाथ बीच में आ जायेगा."

ओह, यह काबुल का बच्चा है शायद!

और फिर ज़िंदगी की सड़क पर आड़े-टेढ़े ढंग से अपनी बातों को बैलगाड़ी हांकने का उसका सिलसिला, "बनारस से आजकल डॉक्टर धीरेंद्र आये हुए हैं. क्या आप उन्हें मिलने जायेंगी?"

"नहीं जी."

फिर एक मायूस स्वर, "अच्छा! मैंने सोचा, शायद आप उनसे मिलना चाहेंगी."

"पर वह हैं कौन?"

काबुल मेरी गरज की दृष्टि से उन महोदय का महत्त्व... परिचय देता है. पर किसी लघुत्तर के लिए यह तो ज़रूरी नहीं होता कि हर महत्तर से मिला ही जाये. और फिर काबुल के माध्यम से ही क्यों जिसे एक फोन के लिए दूसरे की महत्ता का सहारा लेने की ज़रूरत पड़ी?

"एक दिन आपने कहा था, आप मुझे अशोका होटल में कॉफी पिलायेंगी."

"कब कहा था मैंने यह सब?"

"अब आप न पिलाना चाहें यह दूसरी बात है. आखिर हम किसी को बाध्य तो कर नहीं सकते."

एक कंटीला मौन बीच में आकर ठहर जाता है. वह मौन जैसे एक धमाके से फटना और उसे घायल करना चाहता है पर वह उस मौन को संभाल लेता है, "आप कभी हमारे यहां...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

हम जाने क्यों आये हैं इस बस्ती में,
आते ही पछताये हैं इस बस्ती में.

कंघों ने सुलझानें का अभिनय करके,
केश बहुत उलझाये हैं इस बस्ती में.

लोग 'मेक-अप' द्वारा अपने चेहरों पर,
मुस्कानें चिपकाये हैं इस बस्ती में.

जितने भी चेहरे आलोचक दिखते हैं,
सब कुंठा के जाये हैं इस बस्ती में.

लोगों ने हर जगह अखाड़े खुदवाकर,
अपने दांव दिखाये हैं इस बस्ती में.

सच्चाई, ईमान और नैतिकता के,
निश्चित रहे किराये हैं इस बस्ती में

आईनों में अपनी ही परछाईं से,
लोग बहुत घबराये हैं इस बस्ती में.

▣ ज़हीर कुरेशी

तशरीफ लायें न. हमें भी मेहमान-नवाज़ी का मौका दें. मैं तो दो-तीन बार आपसे कॉफी पी आया हूं."

"अच्छा."

"कब?"

"जब भी कभी कोई वजह हुई."

"अब वजह क्या होगी हमारे जीवन में! जीवन में कहीं कोई कशिश नहीं रही."

"क्यों? ऐसी क्या बात है! आप अपना जन्म-दिन तो ज़रूर मनाते होंगे और मेरा अंदाज़ा है, शायद वह कहीं आसपास ही होगा."

"हां."

"कब है?"

"23 जनवरी, पर मैं मनाता कभी नहीं."

"कोई हरज नहीं. मैं उस दिन फोन पर आपको शुभकामनाएं भेज दूंगी."

"वाह! इससे अच्छी बात और क्या होगी! आपकी शुभकामनाएं हमें मिलें, ऐसी खुशनसीबी कहां?"

ओह!

नये वर्ष की पहली जनवरी निकल गयी थी. काबुल का फोन नहीं आया था और यह हैरानी की ही बात थी मेरे लिए. फिर काबुल के जन्म की 23 जनवरी भी आयी थी. शिष्टाचार की समस्या उपदेश देती रही थी कि हमें सदैव सभ्य और मानवीय व्यवहार करना चाहिए—दूसरों की ज़िंदगी को शुभकामना और खुशी को बधाई देनी चाहिए—अपने कहे शब्दों को निभाना चाहिए. इसमें बुरा क्या है! और कोई बहुत खास बात भी क्या है! किसी इंसान का दिल खुश हो जायेगा ज़रा-सी बात से! किसी इंसान की खुशी से बड़ी बात और क्या हो सकती है इस संसार में! देखो तो आज के अखबार में संपादक के नाम मानवता की स्याही से निखरा हुआ कैसा एक द्रवित कर देने वाला पत्र छपा है, 'भारत में और विदेशों में हज़ारों ऐसे अकेले व्यक्ति हैं जिनके पास न कोई मित्र है, न संबंधी जो उन्हें उत्सव-त्योहार के मौकों पर शुभकामना तथा मुबारकबाद दे. हमारी, मित्रों तथा लेखनी-मित्रों की अंतर्राष्ट्रीय संस्था, ऐसे अकेले, उदास, बीमार तथा बूढ़ों को शुभकामना-पत्र भेजती है तथा उनकी उदास ज़िंदगी में आशा और खुशी की उजास लाने की कोशिश करती है. मैं आपके पाठकों से अपील करता हूं कि वे कृपया नये या पुराने शुभकामना-कार्ड हमें भेजें जो कि उन लोगों को भेजे जायेंगे जो अपरिचित लेकिन सहृदय व्यक्तियों से कल्याण-कामना तथा हर्ष-प्रकाश पाना चाहते हैं.'

पढ़कर मन तरल और प्रश्नमय हो उठा था—क्या परिचितों का परिचितों के प्रति कोई दायित्व नहीं? क्या यह सब केवल अपरिचितों के लिए ही होना चाहिए? पर तभी मेरे सवालों को उत्तर देता हुआ आकाश में उड़ता एक गुब्बारा बोला—एक इंसान के दिल और एक आशिक मिज़ाज के दिल में अंतर होता है. किसी आशिक मिज़ाज के दिल को खुश करने की सभ्यता खतरनाक होती है. ऐसे लोग मेरी तरह केवल अदृश्य हवा में जीते और उड़ते हैं. वे यथार्थ की चुभन सहन नहीं कर पाते. इसलिए द्रवित और सभ्य-सवालिया होने की ज़रूरत नहीं.

पर आज सवाल यह है कि काबुल बीमार है. एक बार फिर वह जैसे मासूमियत से पूछ रहा है, "शिलाजीत जी, आप मेरी बात सुन रही हैं न? ऐसा लगता है जैसे आप कहीं और व्यस्त हों."

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है."

"आप कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करतीं. नहीं तो मुझे कैसे पता चलेगा कि जो कुछ भी मैं आपसे कहता हूं, वह ठीक है या गलत?"

उसके शिकायतभरे शब्द जैसे एक बार फिर हम सब को दोषारोपण के घेरे में ले रहे हैं— . . . लोगों में सभ्यता और विनम्रता नाम की चीज नहीं रही. लोग मेरी उपेक्षा करते हैं! मैं यह तो बरदाश्त कर सकता हूं कि कोई मेरे नाम के आगे शून्य लगा दे क्योंकि शून्य से पहले कभी न कभी एक लग सकता है, पर मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि कोई मेरी उपेक्षा करे—क्योंकि उपेक्षा का अर्थ है आगे-पीछे कभी कुछ भी न लग सकना.'

पर आज इस बात का अवसर है कि काबुल के नाम के आगे कम से कम दूरभाषी-सभ्यता और फोनी-कॉल की विनम्रता अंकित की जा सके.

● III-के-24, लाजपत नगर, नयी दिल्ली-110024.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़नामचा

शोक प्रस्ताव के बहाने

◘ से. रा. यात्री

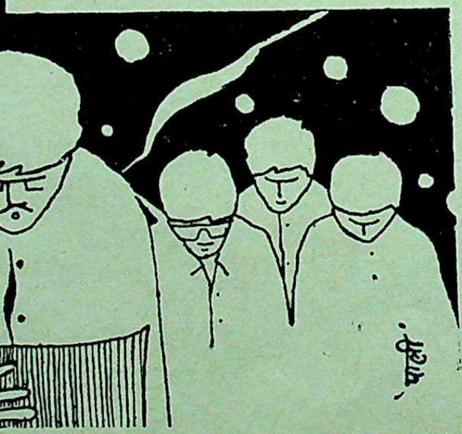

पिछले अनेक बरसों से मेरी रोज़ी-रोटी में एक चीज़ बहुत अनाम ढंग से प्रवेश कर गयी है. विद्यालय में कोई अध्यापक या उसका सगा-संबंधी मर जाता है, तो हिंदी अध्यापक होने के नाते शोक प्रस्ताव लिखकर मैं शोक-सभा में पढ़कर सुना देता हूं. पूरी 'सभा' दो मिनट के लिए आंखें बंद करके दिवंगत के प्रति शोक मग्न हो जाती है और फिर छुट्टी का मज़ा लेती शोर मचाकर तितर-बितर हो जाती है. सुना है, अपने परसाई जी भी काली शेरवानी पहनकर अध्यापकीय जीवन में यही कुछ करते रहे. बस, फ़र्क इतना है कि मेरे लिए काली शेरवानी की कोई कैद नहीं है.

बड़ा कॉलेज है—चपरासी से प्रधानाचार्य तक सौ से ऊपर की संख्या में वेतनभोगी कर्मचारी सेवारत हैं. तीन हज़ार विद्यार्थी हैं. बढ़ती जनसंख्या वाला मुल्क है. मरने वालों की संख्या कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि शोकसभा का आयोजन होते ही विद्यार्थी बड़बड़ाने लगते हैं, "आत्मा को शांति देकर यह भी बता देना कि कल स्कूल खुलेगा या कल भी 'शांति पाठ' होगा!" जैसाकि मैंने कहा कि आत्मा को शांति देने के मामले में मुझे काले चोगे से बरी कर दिया गया है. मैं कपड़े-लत्तों से पादरी या पुजारी दिखलाई भी नहीं पड़ता, लेकिन कभी छठे-छमाही किसी कक्षा को पढ़ाने जाता हूं, तो बच्चे एक दूसरे के कान में फुसफुसाने लगते हैं, "लो आ गया पिंडदानी!"

एक दफा तो मरने वालों की बाढ़ ही आ गयी. घर-बाहर इतने लोग मरे कि नाक में दम आ गया. लड़कों ने अपनी एक अलग से सभा की और बा... प्रधानाचार्य को घेरकर कहा, ... आपको चेतावनी देते हैं कि आ... शोक-सभा के बाद अगर स्कूल बंद ... गया तो हम अनिश्चित काल के लि... हड़ताल पर बैठ जायेंगे. यही नहीं, ... भी नहीं खुलने देंगे."

अब चूंकि यह शोकसभा-सचिव... काम मेरे जिम्मे था लिहाज़ा प्रधाना... ने मुझे तलब करके पूछा, "आप ही ... अब क्या करें? मरने वालों ने तो ... खड़ा कर रक्खा है. ज़्यादातर अ... रिटायर होने से पहले ही मर ... इसके अलावा देश के सभी बड़े ... पचहत्तर और शतक छू रहे हैं. यह ... सिला तो अब इतना बढ़ गया है ... कॉलेज में ताला ही डालना पड़ जा... बोलो क्या करें?"

मैंने समस्या पर गंभीरता से ... विचार करके कहा, "वरिष्ठों को बु... बात कीजिए. मरने का मामला ... मेरा-आपका फैसला सबको एक... मालूम पड़ेगा."

निदान अध्यापकों की सभा ... 'एजेंडा' सामने रखा गया—बढ़ती ... शोक-सभाओं पर विचार-विमर्श! ... काफी देर तक कुछ तय नहीं हो पा... प्रधानाचार्य ने कहा, "आगे से शोक... के बाद छुट्टी बंद कर दी जाये—शोक... के बाद कक्षाएं बदस्तूर चलें!" प्रधा... चार्य की इस सलाह पर इतनी कांव... मची कि 'सभागार' की छत उड़ने ... गयी. कई अध्यापक तो इतने उत्ते... हो उठे कि कुर्सियों से उठकर डेस्कों ... बैठ गये. सबको गहन चिंता हुई ... मृतकों की आत्माओं को जो स... मौरूसी-पट्टे जैसा प्राप्त है, वह जमीं... उन्मूलन की तरह एक झटके में ही ... फेंका जा रहा है.

कई घंटे की गरमागरम बहस के ... एक मध्य मार्ग खोज निकाला ग... स्टाफ का कोई भी मरे तो शोक स... बाद छुट्टी हो.—बीस बरस का सेवा... पूरा कर लेने वाले स्टाफ मेंबर का ... संबंधी मरे तो शोक-सभा के बाद विद्... बंद कर दिया जाये.—बाकी मरने ... के लिए अंतिम कालांश (पीरियड) ... बाद शोक-सभा का आयोजन किया ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां तक मेरा संबंध है, मुझे कोई खास अंतर नहीं पड़ा. मुझे तो चित्रगुप्त की तरह लेखा-जोखा रखना ही पड़ता था. शोक प्रस्ताव की मैं दो प्रतियां बनाता था. एक प्रति डाक से या व्यक्तिगत रूप से संबंधित व्यक्ति को देता था. दूसरी कॉलेज के रिकार्ड में रखनी जरूरी थी, जिससे कि साल के अंत पर कॉलेज-पत्रिका में सब दिवंगतों का एक साथ फातिहा पढ़ा जा सके. बहरहाल इससे इतना अवश्य हुआ कि लड़कों की हड़ताल या भूख हड़ताल की धमकी खत्म हो गयी. प्रकट रूप से मरने के आंकड़ों में भी कुछ कमी हुई. बीस साल से कम की स्टैंडिंग वाले अध्यापकों ने अपने संबंधियों की मौतों का ज़िक्र करना छोड़ दिया. अगर ढंग से शोक मनाकर कॉलेज की छुट्टी भी न की जाये तो कौन अपने सगों की मौत को लजाये!

▣

किसी ने आकर सूचना दी कि 'डीलिंग-क्लर्क' की मां का देहांत हो गया. हिसाब लगाकर देखा गया, तो पता चला कि वह लिपिक चौबीस साल से विद्यालय की सेवा कर रहा है. अपने 'मेरिट' पर वह स्वत: ही वरिष्ठों की पंक्ति में पहुंच गया. प्रधानाचार्य ने मुझे बुलाकर कहा, "निहाल बाबू की मां मर गयीं. उसके लिए तो शोक-सभा करनी ही पड़ेगी. नहीं करेंगे तो दफ्तर के दूसरे बाबू तड़क-भड़केंगे. आप फौरन शोक प्रस्ताव लिख लाइये ताकि शोक-सभा का मौन टूटते ही कॉलेज बंद कर दिया जाये."

हालांकि कई लोगों को इस शोक-सभा से हार्दिक शोक हुआ लेकिन क्या किया जा सकता था! निहाल चंद लिपिक ही सही—मगर चौबीस बरस पुरानी नौकरी तो किसी को भी वरिष्ठ बना देती है.

इस शोक-सभा के समाप्त होते ही कॉलेज परिसर खाली हो गया. चंद क्लर्क, चपरासी, एक-दो अध्यापक और प्रधानाचार्य को छोड़कर पूरे विद्यालय में उल्लू बोलने लगे. मैंने जल्दी-जल्दी शोक प्रस्ताव की दूसरी प्रति 'रिकार्ड' में रखने के लिए नकल की और उसे प्रिंसिपल को सौंपकर दफ्तर से बाहर जाने लगा—सोचा पूरे दिन की छुट्टी में घर के छोटे-मोटे काम ही निपटा लूंगा. इस बार यह छुट्टी काफी देर बाद मिल रही थी.

ज्योंही मैं दफ्तर के द्वार पर पहुंचा, डीलिंग क्लर्क निहाल चंद निहायत ग़मगीन हालत में आता दिखाई पड़ा. शोक प्रस्ताव की एक प्रति मेरे रजिस्टर में मौजूद थी. रजिस्टर से निकालकर वह प्रति मैंने उसके हाथ में दे दी और उसके कंधे पर हाथ रखकर शोकाकुल स्वर में बोला, "बड़ा दुख है निहाल बाबू, आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया."

उसने शोक प्रस्ताव के काग़ज़ को सरसरी नज़र से देखकर उलटा-पुलटा और रुंआसे स्वर में मुझसे बोला, "मां का क्या, सुरगवास तो मेरा हो गया मास्टरजी! आपणे भी तावली (जल्दबाजी) मचाने की हद्द कर दी."

मैंने और भी विचलित होकर कहा, "मुझे मालूम नहीं था कि तुम आज आओगे. मालूम होता तो शोक-सभा हम तुम्हारी उपस्थिति में ही करते."

उसने अधीर होकर हवा में हाथ हिलाया और मेरी नासमझी पर खीझकर बोला, "अजी शोक-सभा कूं मारो गोली! मेरा मतलब यो ना है. मां तो मरी परसों, कल हो गया इतवार, आज सोमवार कूं आपने छुट्टी करा दी. यहां तो होग्या पटड़ा. लड़कों कूं सिक्योरिटी वापस करनी थी. आज तीस-चालीस रुपये खरे वण जात्ते. मां-बाप कूं तो कधी न कधी मरणा होवे ई है पर, ऐसी अंधेरगर्दी इसी इस्कूल में देक्खी के कोई झट्टे को भी मर जाये तो सारे दिन भर कूं कालिज बंद. मरे का तो सबर हो जावे, पर दस आदमियों का टब्बर मेरी छात्ती पै धरा—तनखा मिले सोहरी (ससुरी) तीण सौ तेरे रुपल्ली. मां के कफन-दफन पै चारक सौ फुंक ही गये—रहे-सहे इस्कूल बंद करके आज आपणें पचासेक मरवा दिये."

"आपणे तो भली दुस्मनायगी निभाई मास्टरजी!" कहते हुए निहाल चंद ने शोक प्रस्ताव मेरे हाथ में रख दिया और दफ्तर में घुसते हुए तैश में बुदबदाया, "इसे सीस्से में मढ़वा के अपणी बैठकां में लगा लो."

. . . और मैं निहाल चंद की मां का शोक प्रस्ताव लिए आगे बढ़ गया और करता क्या! ☐

लघुकथा

बेटे

▣ डॉ. सतीश दुबे

शीत का कोहरा फैला हुआ था. दूर चलते लोग केवल छाया से लगते. उसका ग्यारह साल का लड़का काम के लिए घर से निकल चुका था. अचानक उसकी घरवाली की आंखों ने धुंधली रोशनी से कपड़े में बंधी रोटी को देखा—लगता है, रोटी ले जाना भूल गया.

वह उठा और तथाकथित टिफिन देने चल पड़ा. सड़क के दोनों ओर क्वार्टर्स से हटकर लंबी रौ के सामने वाले क्वार्टर पर उसकी निगाह टिक गयी. अंगीठी से निकल रहे धुंए के बीच एक आकृति हिल-डुल रही थी. वह बढ़ता गया, उसने पहचाना, यही तो उसका बेटा है.

"ले रे तेरी रोटी तो रह गयी थी, किया कर रिया है ये. . ."

"पानी गरम कर रहा हूं काका."

"सुबे-सुबे पानी गरम. . ."

"हां काका, अभी साब के बेटे उठेंगे तो मुंह धोयेंगे."

उसने एक बार शीत के कारण कांप रहे बेटे की ओर देखा और फिर साहब के बेटों की धुंध तस्वीरें उसके सामने उभरने लगीं और दोनों की तस्वीरें अपने दिमाग़ में तौलते हुए उसने अपने कमज़ोर पैरों को रास्ते पर मोड़ दिया. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सुरजीत की अटैची से निकला माइकल अंकल का, कोर्ट की मुहर लगा घोषणा-पत्र हाथ में है और बड़ी दी की चिट्ठी सामने मेज पर... जिसका एक-एक अक्षर उसे कुरेद कर फिर उसी बीते हुए कल की ओर ले जा रहा है, जिसके विषय में पहले भी उसने कई बार सुरजीत से कहा था, "मुझे कुछ भी नहीं भूलता. बड़ी बेचैनी-सी महसूस करती रहती हूं. पापा का घर, उस घर में अपना छोटा-सा कमरा और उस कमरे से लिपटी सैकड़ों, हज़ारों, अनगिनत यादें किस तरह मुझे भीतर तक बेधती हैं, मैं नहीं बता सकती."

सुरजीत उसे बहलाना चाहते हैं. अतीत के दंश से मुक्त कर वर्तमान को भरपूर जीने की कशिश में बंधी हुई देखना चाहते हैं.

कहते हैं, "जो पीछे छूट गया उसे भूल जाओ." लेकिन पीछे छूटा हुआ कल अपनी तमाम कड़वी-मीठी कशिश के साथ कितना पुरअसर होता है—इसे कोई सुनीता से पूछे.... कैबिनेट की दाहिनी तरफ हंसते हुए पापा, कैबिनेट की बायीं तरफ मां... बीच में सुरजीत ने सुनीता के साथ अपनी ताजा खिंचवायी हुई तस्वीर रख दी है. पापा की मुस्कराती हुई तस्वीर, उनकी बोलती हुई-सी आंखें उसकी उद्विग्नता को भटकाती हुई बार-बार छज्जू-बाग, पटना की उस बड़ी-सी कोठी की ओर जो खींच ले जाती हैं!

ऊंचे फाटक की बगल में संगमरमर की चौड़ी प्लेट पर खुदा हुआ—कमल निवास...! मां के चले जाने के बाद सुनीता ने जान बूझकर वे अक्षर मिटवा दिये थे! फाटक पर झूलती

• ऋता शुक्ल

आहट

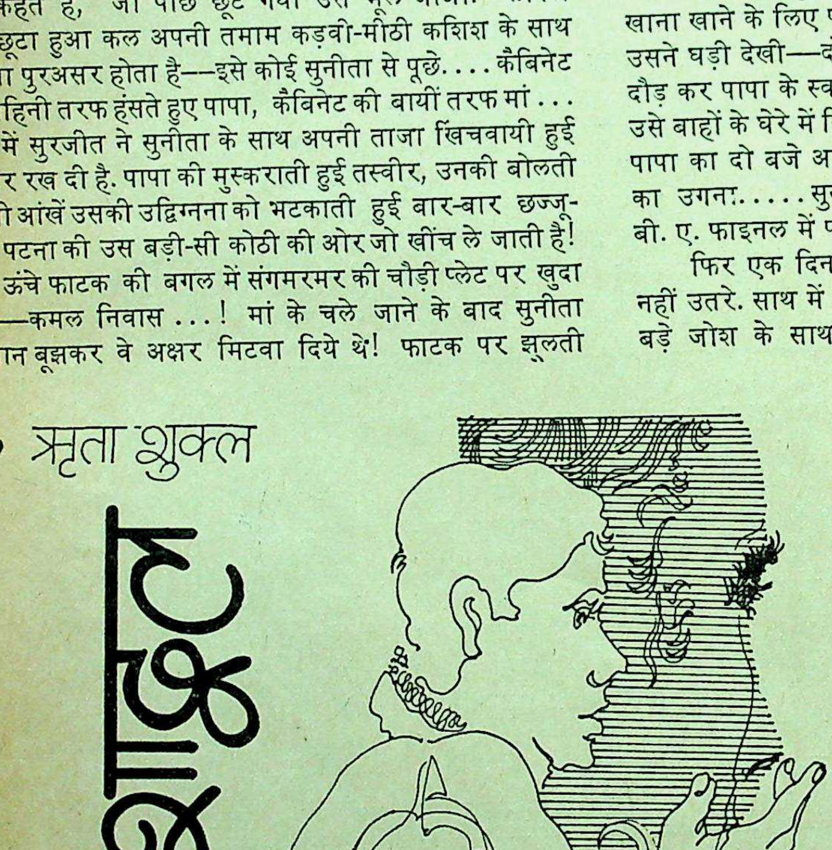

रातरानी की बेल की जगह स्लेटी रंग का साइनबोर्ड लग ... है—अतुल माइकल के. जी. स्कूल...!

अभी पिछले साल ही तो...

छज्जू बाग की वह बड़ी-सी कोठी खामोशी में डूबी ... भांय कर रही थी. बाहर ऊंघते हुए दरवान ने पूछा था, "कि... खोज रही हैं मेम सा'ब? आज तो बच्चों की छुट्टी बारह ... ही हो गयी."

"यहां मिस्टर जॉन माइकल रहते हैं न?"

"हां-हां...! आपको उनसे मिलना है क्या? दरवा... की आंखों में एक खुशनुमा हैरत थी... आइए... आइए!"

▣

लंबे पोर्च पर सुनीता के पांव रपट चले थे. दोपहर ... खाना खाने के लिए पापा अस्पताल से ठीक दो बजे घर आते ... उसने घड़ी देखी—दो बजे थे. यही वक्त..., छोटी-सी सुनी... दौड़ कर पापा के स्वागत के लिए खड़ी हो जाती थी और पा... उसे बाहों के घेरे में लिये दिये खाने की मेज पर जा बैठते थे... पापा का दो बजे आना वैसे ही तय था, जैसे रोज सुबह सू... का उगना.....सुनीता बड़ी हुई, पटना वीमेंस कॉलेज ... बी. ए. फाइनल में पहुंच गयी.

फिर एक दिन... पापा अपनी काली फिएट से अके... नहीं उतरे. साथ में खूब ऊंचा, खूब गोरा एक युवक था. पापा ... बड़े जोश के साथ परिचय कराया, "सुनी, दिस यंग ब्वॉ... सुरजीत... डॉ. सुरजीत..., वे... जीनियस ऐंड वेरी गुड ब्वॉय... और जीत, यह मेरी बिटिया सुनी."

दरबान उसे गोल कमरे में बि... गया. पापा की मनपसंद पुरानी ईरा... कालीन, पापा का खरीदा हुआ सोफासे... नीली दीवार पर उनका बड़ा-सा तैल... चित्र, लगता है अंकल ने इधर इसे बनवा... है, और उस चित्र के गले में झूल... हुई जरी के तारों की बड़ी-सी माला... पापा की तस्वीर के दाहिने टंगी हु... थी बड़ी-सी दीवार घड़ी, जिसकी टिक... टिक् सुनीता के भीतर कहीं आघा... करती हुई कह रही थी, "पांच सा... बीत गये सुनीता! पांच साल क्या क... होते हैं पुरानी छाप को धो-पोंछ क... साफ करने के लिए...?"

भीतर वाले दरवाजे पर लटक... भूरा परदा खिसका कर अंकल माइक... सामने खड़े हो गये थे. सन से सफेद बा... आंखों में कच्ची नींद से उठाये ... के कारण पड़े लालडोरे और मुंह पर फै... हुआ विस्मित आह्लाद...! दोनों बां... फैला कर आगे बढ़े थे, "मेरी बच्ची... सुनी, तू...? ऐसे अचानक...?"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नया नाम

सुनीता को लगा था—सामने पापा खड़े हो गये हों . . . !

"बैठो बेटे, बैठो! सुरजीत नहीं आया?"

"उन्हें पी. एम. सी. एच. में कुछ काम था."

"अच्छा-अच्छा . . . ! तुम आराम से बैठ जाओ बेटे, मैं अभी आया!" अंकल अस्त-व्यस्त से होते अंदर चले गये थे.

कुछ ही देर बाद अंकल के पीछे-पीछे शरबत से भरे दो गिलास ट्रे में सजा कर दरवान अंदर दाखिल हुआ था. अंकल भी हाथ-मुंह धोकर ताजा हो आये थे.

सुनीता ने बात शुरू करने के लिए पूछा था, "अंकल, कितने बच्चे पढ़ते हैं स्कूल में?"

"ढाई सौ के लगभग तो ज़रूर ही होंगे. मेरा तो सारा वक्त यही स्कूल ले लेता है बेटे!"

अंकल अचानक उत्साहित होकर उठ खड़े हुए थे, "चलो, तुम्हें पूरा स्कूल दिखाऊं! चलो, कम ऑन . . . !

सारे कमरों में घुमाने के बाद अंकल ने पापा वाले कमरे के दरवाजे का परदा खिसकाया था, "और यह तुम्हारे अंकल का कमरा बेटे . . . ! . . . अतुल दा इसी में सोते थे न, मैंने सोचा—मुझे भी यहीं रह कर शांति मिलेगी . . . . तू जानती है बिटिया, पिछले जाड़े में मैं बुरी तरह बीमार पड़ गया था. उस वक्त अतुल दा बार-बार याद आते थे. उनकी सेवा के लिए अंतिम समय तक तू थी बिटिया! मेरा कौन है . . . ? उन दिनों मैं हमेशा यही सोचता था. और अब भी कभी-कभी यही खयाल बेहद परेशान करता है. यूसुफ के अलावा मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं!"

▣

सिविल सर्विस में आने के पहले पापा फौजी डॉक्टर रह चुके थे. वहीं मेजर जॉन माइकल साहब उनके दोस्त बने थे. पहले हल्की जान-पहचान, फिर दोस्ती और फिर ऐसी घनिष्ठता कि फौजी ज़िंदगी छूटने के बाद भी मुंह से मेजर जॉन माइकल का नाम नहीं छूटा. वे बताया करते थे, "सुनी, उससे तुम्हें मिलवाऊंगा. इतना ज़िंदादिल, इतना खुशमिजाज आदमी मैंने आज तक नहीं देखा. पूरा दिन खिलखिलाहटों और चुटकलेबाज़ी में बिता ले जाने वाले आदमी की अंदरूनी ज़िंदगी चुपचाप तीन-तीन हादसों का बोझ एक साथ ढो सकती है—मेजर को देखकर कोई भी यकीन नहीं करेगा. जीप-दुर्घटना में बीवी के साथ दोनों ही बच्चे चल बसे, फिर भी वह शख्स जी रहा है. दूधिया रातों में चट्टान से सिर टकरा कर उसे रोते हुए मैंने देखा है और दिन के उजाले में उसका ठहाकों भरा पुरअसर अभिनय भी. माइकल अपने-आपको छलता हुआ जी रहा है सुनी! मुझे तो लगता है, इसी तरह हम सब भी कहीं-न-कहीं अपने आपको छलते हैं."

डाइबटीज़ का पूरा प्रभाव फैल जाने के दिनों में ही एक दिन अचानक पापा का पता ढूंढ़ते हुए मेजर जॉन माइकल पटना आ गये थे. नौकरी छोड़ कर हमेशा के लिए . . . ! पापा ने उन्हें बड़े ताऊजी से भी ज्यादा सम्मान दिया था . . . ! सुनीता को

▣ ऋता शुक्ल
जन्म : 14 नवंबर 1949.
शिक्षा : एम. ए. हिंदी.
लेखन को शौक नहीं साधना का सफल मानती हैं. जिसका कोई पड़ाव नहीं, कोई अंत नहीं.
संप्रति : स्थानीय महिला कॉलिज में प्रवक्ता.
कुछेक कहानियां प्रकाशित. 'सारिका' में यह पहली कहानी है.

याद है, उसी समय से परिवार में भी विघटन के आसार दिखाई पड़ने लगे थे. ताऊजी, बड़ी दी और जीजाजी ने एक अगोचर शिविर खड़ा कर लिया था और भीतर ही भीतर भरपूर मंत्रणा चलने लगी थी.

पापा के आखिरी दिनों में इस घर की हवा कितनी क्षुब्ध हो उठी थी . . . ? मां असहाय-सी कभी पापा के सिरहाने बैठी बिलखती और कभी चुपचाप जड़ बनी बड़ी दी, जीजाजी के सलाह-मशविरे को सुनती रहतीं.

एक दिन अचानक ही उनकी हालत कुछ ज्यादा खराब हो गयी थी. मां एकदम व्याकुल हो कर पापा का हाथ पकड़ती हुई बिलख उठी थी, "मुझे ऐसे मत छोड़ कर जाइए! सुनीता का ब्याह करना है, मैं अकेली क्या करूंगी?"

यातना की तंद्रा से ज़बर्दस्ती बाहर आने की कोशिश करते पापा की थकी हुई आंखें एक बार मां की ओर भरपूर खुली थीं—कितनी गहरी शिकायत चुपचाप कौंध गयी थी पापा की उस दृष्टि में! सुनीता की सूक्ष्म मानस-तरंग ने उस नीरव दृष्टि में अभिव्यंजित सारे अनकहे शब्द अपनी संवेदना के तरल फैलाव पर लिपिबद्ध कर लिये थे : "मैं जा रहा हूं. तुम्हें मेरे जाने का मोह नहीं, अपनी चिंता ज्यादा है. यही संबंध है, यही जीवन के छूटते हुए दायरे का मोह और उसका वास्तविक रूप . . ! सब अपने स्वार्थ के लिए ममता जोड़ते हैं. सचमुच, जहां स्वार्थ नहीं, वहां मोह भी नहीं!"

अंकल ने टोका था, "कहां खो गयी बेटे! पापा की याद आ रही है न?"

सुनीता अंकल के हाथों का वात्सल्य-स्निग्ध स्पर्श और भरी हुई आंखों से छलकती आशीष बटोर कर कोठी से बाहर चली आयी थी.

▣

शाम को सुरजीत घुमाने ले गये थे. . . गंगा के किनारे डूबता हुआ सूरज और दूर से दिखाई पड़ते धुंधले बांसघाट पर जलती हुई एक-दो चिताएं, अस्त होते जीवन की आखिरी लपटें! सुनीता की अनमनी आंखों में पापा के जीवन की वह आखिरी रात कौंध उठी थी. प्राणों पर दर्द का असीमित दबाव महसूसते हुए पापा ने ईजीचेयर पर निंदियाई-सी बैठी सुनीता को हाथ से छूकर जगाया था, "बेटे, एक कप कॉफी. . "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

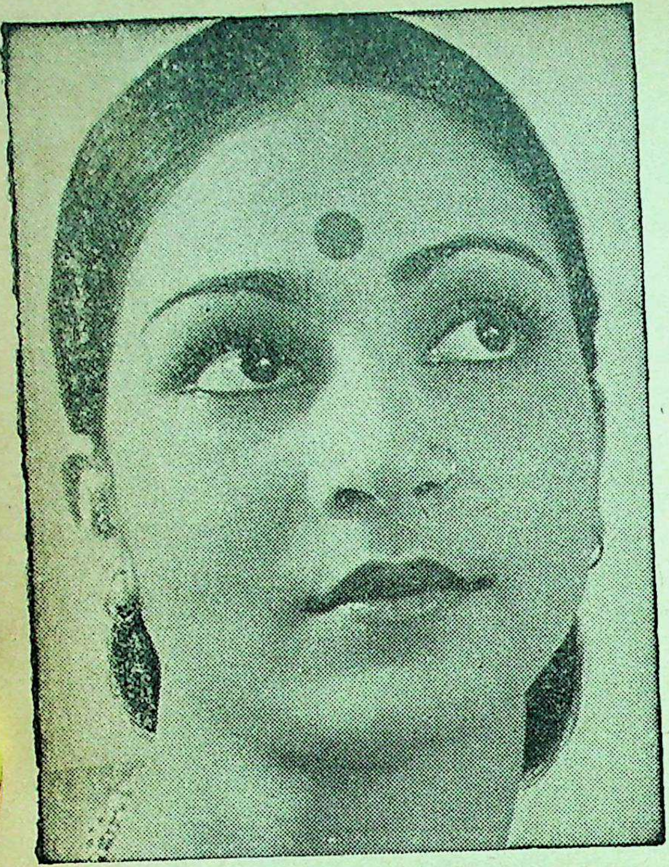

चन्दन-चुम्बित रंग-रूप

गोकुल लगाइए, यौवन रचाइए. गोकुल असाधारण पाउडर है. कारण, इस में शुद्ध, माइक्रोफ़ाइन्ड चन्दन जड़ी-बूटियां और अन्य विशिष्ट चीज़ें हैं.

अपने पर स्नेह बरसाइए. दूसरों को सबक सिखाइए.

ADWAVE/TSR/677R

गोकुल

सॅन्टाल व सैन्डलवुड पाउडर

टी. एस. आर. एण्ड कं., मद्रास
रामापुरम्. मद्रास 600 089.

उनकी आवाज़ में याचना थी. वे दोनों हाथों से को... मसलते हुए निढाल हुए जा रहे थे. सुनीता फौरन ... किचन की ओर भागी थी. गैलरी के बीचों-बीच बड़ी दी के ... से ज़ोरदार बहस की आवाज़ आ रही थी. तेज़-तेज़ कद... बावजूद कुछ वाक्य उसके कानों को झुलसा गये थे.

"मां को भी कुछ पता नहीं. . ."

"सुनीता इज़ वेरी क्लेवर! देखना शीलू, तुम्हें कुछ ... मिलेगा."

"उफ़! बोर हो गये यहां बैठे-बैठे! देखो, कब तक खींचते...

एक दिन पहले उसने ताऊजी को बड़ी दी और जीजा... साथ लॉन के एक कोने में खुसफुसाते हुए साफ़ पकड़ लिया... "अतुल का दिमाग ख़राब करने वाला एक सुरजीत तो ... आखिरी बेर ई ससुरा माइकल जाने कहां से आ टपका! ... क्रिस्तान, दूसरा पंजाबी. . . . ! बड़ी बिटिया, अतुल तो शुरू... एकतरफा सोचता रहा, अब इन दोनों ने मिलकर उसकी ... बिल्कुल ही खराब कर दी है. . हम भी तो इतने दिन से ... कर बैठे हुए हैं. अरे भाई, आदमी को ज़िंदगी रहते पूरा हि... किताब साफ़ कर लेना चाहिए—इसी में बुद्धिमानी है. मैं ... से कहूंगा—ऐसा न हो कि बांट-बटखरे में तुम्हारे हाथ ... हो जाये. . ."

पापा के जीते-जी उनकी कोठी में उनके विरुद्ध जो ... चल रहा था, उसकी गंध पापा तक न पहुंचे, इसकी उसने ... कोशिश की थी, लेकिन बड़े ताऊजी उसकी अनुपस्थिति में ... के सिरहाने बैठकर संसार-धर्म पर लंबा प्रवचन दे ही ... वह दवा और फल लेकर कमरे में गयी थी तो पापा की बंद ... की कोरों से टप-टप आंसू टपक रहे थे.

पापा ने कॉफी पीकर सोना चाहा था. वह उन्हें गर्म ... से ढककर चली गयी थी. उनका शरीर ढका रह गया ... चुपचाप चले गये थे. . . और फिर तेरहवें दिन वसीयतनामे... वह विस्फोट. . . . .

रामकृष्ण सहाय—पापा के वयोवृद्ध एडवोकेट ने ... अकेले में मां को सब कुछ समझा दिया था. फिर पापा के ... कमरे में सबके सामने उनके द्वारा पढ़ा गया वसीयतनामा...

"पापा के हिस्से का खेत बड़ी दी के लिए, गांव का मकान ... बैंक की कुल जमाराशि मां के नाम, पटना की कोठी माइकल ... और सुनीता के हिस्से और पापा की मेडिकल साइंस ... सारी किताबें मेडिकल कॉलेज की लाइब्रेरी के लिए. . ."

सुनीता की आंखें सबके चेहरों पर बारी-बारी से घूम... थीं—माइकल अंकल का बच्चों-सा मासूम चेहरा किसी ... अपराध के बोध से सहमा निःशब्द आंसुओं में तर हो ... रहा था. बड़े ताऊजी के चेहरे पर कालिख की परत ... चली जा रही थी. जीजाजी की जलती हुई आंखों में क्रो... हताशा को चुपचाप पी जाने का संकेत था और बड़ी दी ... से जड़-सी हो गयी थीं. पापा ने कब चुपचाप ये फ़ैसले ... किसी को पता तक नहीं चल सका था !

बड़े ताऊजी पापा के श्राद्ध में सम्मिलित हुए बगैर ... गये थे. बड़ी दी और जीजाजी को भी जल्दी थी. बच्चों की ... जीजाजी की नौकरी और गृहस्थी के कई झमेले, कई ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके चले जाने के बाद मां और भी हताश, और भी टूटी-सी दिखने लगी थीं.

मां की मृत्यु ने सुनीता को बुरी तरह झकझोरकर रख दिया था. माइकल अंकल के स्नेह ने ही उसे टूटने से बचाया था. सब तरफ से कटी गुमसुम सुनीता उन दिनों जिस मनःस्थिति में थी, आज उसकी कल्पना भी सिहरा देने वाली है. बड़ी दी से सांत्वना की आशा थी, पर वे मुंह फेर कर चली गयी थीं. उनकी उपेक्षा के अप्रत्याशित आघात ने सुनीता को कितने बड़े मति-विभ्रम में डाल दिया था! उसी शंकाविकल मानसिकता के आवेश में एक दिन उसने सुरजीत से एकतरफा ज़ोरदार बहस भी कर डाली थी. सुरजीत जितनी जल्दी हो सके पटना छोड़ देना चाहते थे. उन्हें जमशेदपुर में एक ऊंचा ऑफर मिला था और वे सुनीता को लेकर 'सेटल' होने की फिक्र में रोज़ उसे समझाते थे, "सुनी, इस तरह गुमसुम रहने से तो कोई रास्ता नहीं निकलने का. तुम कहो तो मैं अंकल से बातचीत करूं. . . . "

सुरजीत के उस प्रस्ताव पर एक दिन सुनीता अकारण ही बिफर उठी थी, "तुम चाहते हो कि जितनी जल्दी हो सके पापा की आधी कोठी पर तुम्हारा अधिकार हो जाये, यही न? सब यहां अपना-अपना स्वार्थ लेकर ही आते हैं. ."

और वह फूट-फूटकर रोने लगी थी.

सुरजीत देर तक ठंडी दृष्टि से उसे देखते रहे थे, फिर उन्होंने पूरी गंभीरता के साथ कहा था, "सुनी, पापा की पूरी कोठी माइकल अंकल के लिए छोड़ दो! उनकी ख़्वाहिश भी है नन्हें-नन्हें बच्चों का स्कूल खोलने की! और फिर मैं कोठी के काग़ज़ात नहीं, सिर्फ तुम्हें ले जाना चाहता हूं."

वकील के सामने दस्तखत करते वक्त माइकल अंकल साथ थे. कोठी छोड़ते वक्त उनकी भीगी हुई आंखें दूर तक साथ लगी चली गयी थीं.

सुनीता कैसे उस अतीत से नहीं जुड़े. . . ! एक सप्ताह पहले अंकल के अस्वस्थ होने की सूचना यूसुफ की टूटी-फूटी लिखावट में मिली थी. सुरजीत अकेले ही चले गये थे—वह शरीर की अवशता में बंधी छटपटाती रहने के लिए, आशंकाओं की अनगिनत अग्नि-शलाकाओं का स्पर्श झेलने के लिए यहीं जमशेदपुर में पड़ी रह गयी. लेडी-डॉक्टर ने कहा था, "एक सप्ताह और!"

सुरजीत ने जाते वक्त उसे बार-बार चेतावनी दी थी, "तुम्हें बिल्कुल नर्वस नहीं होना है. कोई ज़रूरत पड़े, पड़ोस में डॉ. चड्ढा हैं या फोन करके डॉ. मोहिनी को बुला लेना. रामू और आया दोनों को बराबर घर पर ही रखना. मैं अंकल को साथ लेता आऊंगा. . . . "

अंकल साथ नहीं आये. सुरजीत अकेले लौट आये हैं. उनकी अटैची में है—क्रॉस पर झूलते हुए ईसा मसीह का छोटा-सा लॉकेट—नन्हें शिशु के लिए अंकल का आखिरी उपहार और उसके साथ ही अंकल की अंतिम घोषणा—यह कोठी मिसेज सुनीता सुरजीत के नाम रहेगी! यदि वे चाहेंगी तो बच्चों का स्कूल चलता रहेगा.

और बड़ी दी की चिट्ठी में कौन-सी घोषणा है:

"सुनी, पापा मेरे साथ बहुत बड़ा छल कर गये. माइकल साहब की ज़िंदगी है ही कितने दिनों की, उनके बाद पटना वाली कोठी की मालकिन तुम्हीं बनोगी. समझ में नहीं आता, पापा ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? तुम्हारे जीजाजी मेरी ओर से कचहरी में अपील करने जा रहे हैं. माइकल साहब के हिस्से तो कुछ नहीं आयेगा, इस्कूल-विस्कूल का झमेला खतम करके कोठी बराबर-बराबर दो भागों में बांट दी जायेगी. तुम सोच लेना और हमारी तरफ से माइकल साहब को भी खबर कर देना. बिना झगड़े-झंझट के मामला सुलझ जाये तो और भी बेहतर होगा. . . . "

सुनीता का तनाव एक बार फिर टुकड़े-टुकड़े बिखर जाने की हद तक पहुंच चुका है. एक बार फिर वह जड़ हो गयी है. माइकल अंकल की अकेली मौत पर कलेजे को फाड़ती हुई रुलाई उभरना चाह रही है और दीदी के शब्दों की प्रतिक्रिया तीखा अट्टहास बनकर चारों तरफ पसरने की चेष्टा कर रही है.

सुरजीत तो एक अनुभवी चिकित्सक की तरह उसे जबर्दस्ती बिस्तर में लिटाते हुए, ताकत की गोलियों के साथ तनावमुक्त होने की हिदायत देकर चले गये हैं. जाते-जाते फिर एक बार दुहरा गये हैं, "जो बीती, उसे भूल जाओ सुनी, मैं जो हूं"

लेकिन वह अब तक तय नहीं कर पायी कि माइकल अंकल की घोषणा में दोबारा में लौट आये अतीत का वरण करे या दीदी के निर्मम प्रहार से पराजित होकर उस अतीत का प्रत्याख्यान..?

सुना है, रेगिस्तानी इलाकों में लंबे सफर पर निकला यात्रियों का कारवां धूल भरी आंधी से संरक्षण पाने और सफर की रेतीली थकान भुलाने के लिए शाद्वल की तलाश करता रहता है. संबंधों के इस रेतीले एहसास में क्या सुनीता के लिए कोई शाद्वल नहीं. . ?

है. . . ! हो सकता है. . . ! अतुल माइकल स्कूल का अस्तित्व ही कड़वी स्मृतियों से अकुलाई हुई सुनीता की चेतना को शीतल करने का एकमात्र उपचार बने. . . ! इतना तो तय होना ही चाहिए कि मिसेज सुनीता, सुरजीत, अतुल, माइकल स्कूल को कभी टूटने नहीं देंगी. □

● निकट शांति-सदन, टुंगरी, चाईबासा (बिहार)

ग़ज़ल

कुमुदिनी रातें—कमल दिन क्या हुए,
खिले-खुशबूदार पल छिन क्या हुए.

क्या हुईं वे चौमुखी संझबातियाँ,
पर्व-तिथि-त्यौहार अनगिन क्या हुए.

चौक-अक्षत-फूल-टीका-जल शुभम्,
रोज के वे शकुन-अशकुन क्या हुए.

▣ ओम प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रिपोर्ताज

दिल्ली का नया बाजार : सड़कों पर बिखरे अनाज और पेट के रिश्ते का आदिम सिलसिला

□ अ. ना. मुद्गल

दिल्ली के तिपहिए स्कूटरों के पीछे अक्सर कोई-न-कोई इबारत लिखी होती है. दरअसल वह सिर्फ इबारत ही नहीं होती—एक कहानी होती है, एक इतिहास होता है—आदमी का अपना, अपने परिवार का इतिहास, कुछ आस्थाएं होती हैं, कुछ विश्वास होते हैं, कुछ राहतें होती हैं और होता है मुगल बादशाहों के प्यार से भी बड़ा, गहरा और असली प्यार, और भी न जाने क्या-क्या! —'सत गुरू तेरी ओट. . .बाहे गुरू दी फतह. . . मुन्ना-मुन्नी दी गड्डी. . .भगवान रक्षा करें. . .जन्नत की सैर. . .बुरी नजर वाले तेरा मुह काला. . .'आदि का मतलब कहानी, इतिहास, आस्था, विश्वास, राहत, और प्यार सभी कुछ हो सकता है. इनके अलावा ऐसी इबारतों का एक मतलब और भी होता है—कुछ-कुछ 'शुभ लाभ' और 'लक्ष्मी जी सदा सहाय' जैसा. किसीके जहन में सत-गुरु शुभ है, किसीके बाहे गुरू, किसीके लिए मुन्ना-मुन्नी और किसीके लिए भगदान या जन्नत की सैर अथवा कोई साफ मुंह वाला. लेकिन ये सारे 'शुभ लाभ' पैसे के लिए हैं और हर सामान्य जन के लिए पैसे के साथ पेट जुड़ा होता है. मेरे लिए पैसे और पेट की बात उस दिन कुछ ज्यादा ही अहम हो गयी थी जब एक 'मुन्ना-मुन्नी दी गड्डी' ने मुझे 'नया बाजार' में उतारा था.

'नया बाजार', दिल्ली की अनाज मंडी. चारों ओर सड़ते हुए अनाज की बू, बैलों के पेशाब की बू और मेहनत-कश आदमी के पसीने की बू. ये सारी बूएं मिलकर दिमाग पर अजीब-सी कैमीकल प्रतिक्रिया पैदा कर रही थीं. सीधे हाथ के फुटपाथ पर फटे हुए तिरपालों के 'रैन बसेरे' और उन रैन बसेरों के बाहर पत्थर की चक्कियां और मिट्टी के चूल्हे. चूल्हे ठंडे पडे थे और चक्कियां खामोश. किसी बया के उजड़े घोंसले-से सन्नाटे भरे रैन बसेरे.

फुटपाथ के इस हिस्से को छोड़कर सारे बाज़ार में रुके हुए ट्रैफिक का शोर और अफरा-तफरी मची हुई थी. युवा फोटोग्राफर जयनर मेरे साथ थे. दरअसल उन्होंने ही मुझे इस बाजार की खूबियां-खामियां बतायी थीं. काफी दिनों से इच्छा थी कि दिल्ली के पेट से जुड़े हुए इस हिस्से को देखा जाये और उस दिन हम वहां थे. जयनर ने बताया था कि यहां 'नो पार्किंग' है लेकिन सबसे ज्यादा 'पार्किंग' यहीं थी. ट्रकों, बैलगाड़ियों और हाथगाड़ियों का मेला-सा लगा था. हार्नों का शोर और पल्लेदारों की चीखें, खरीददारों और व्यापारियों की बेअसर तू-तू, मैं-मैं से बाजार भरा हुआ था.

'नया बाजार' के नाम के सिवाय सभी कुछ पुराना और बिखरा हुआ था. सड़कों, नालियों और फुटपाथों पर अनाज के दाने बिखरे पड़े थे. फटेहाल बच्चे अनाज के उन दानों को इस तरह बीन रहे थे जैसे बरात में लुटाये हुए पैसे और बताशे बीन रहे हों. एक नाली के ऊपर बैठी कुछ औरतें उस बीने हुए अनाज को फटक रही थीं और कुछ दालें दल रही थीं. जयनर ने बताया, "शाम को यही अनाज फुटपाथों पर बिकने लगेगा. यह सिलसिला वर्षों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चला आ रहा है."

मेरे सामने सारा बाजार एक बहुत बड़े खेत में बदल गया था और लग रहा था जैसे अभी-अभी खेतों की फसल कट कर खलिहानों में पहुंची है और मज़ूरों के घर की औरतें-बच्चे 'सिला' (खेतों में पड़ी रह गयी बालियां) बीन रहे हैं. पेट की आग गंदी और साफ ज़मीन नहीं देखती, सिर्फ अनाज देखती है. और वही अनाज यहां देखा जा रहा था—बैलों के गोबर-पेशाब से भरी सड़कों पर, नालियों में, फुटपाथों पर. और ढेर-से इंसानी हाथ उसे बीनने में मशगूल थे और मेरे सामने फसल कटे खेत फैलते जा रहे. थे.

मुझे खेतों से शहर में वापस बुलाया जयनर ने चाय की बात का धक्का दे कर. हम जिस फुटपाथ पर खड़े थे वहीं एक बेंच पर चाय का स्टाल खुला था. कई पल्लेदार गंदे गिलासों में भरी काली चाय सुड़कते हुए सुस्ता रहे थे. मुझे लग रहा था, जिस तरह वर्षों से यह अनाज बीना जा रहा है उसी तरह वर्षों से ही इन केतलियों में यह चाय उबल रही है. मेरा आभिजात्य सोच रहा था—वर्षों पुरानी शराब जिस चाव से पी जाती है क्या उसी चाव से वर्षों पुरानी चाय भी पी जा सकती है!

हम लोग अनाज फटकती एक औरत के पास खड़े हो गये. क्षण भर आंखें उठा कर उसने तौला कि खरीददार है या पुलिसिया. और फिर आश्वस्त हो कर अपने काम में मशगूल हो गयी. हम लोग मशीनी ढंग से चलता उसका सूप देखते रहे. कुछ देर बाद मैंने पूछा, "आप लोग कहां के रहने वाले हैं?."

औरत ने एक क्षण मुझे देखा और पीछे मुड़ कर खामोश खड़े रैन बसेरे की ओर इशारा कर दिया, "वहां के",

मुझे हंसता देख पहले वह कुछ झेंपी और फिर खुद भी हंसने लगी. फिर बोली, "हां बाबू, अब तो हम यहीं के हैं. वैसे दूर बिहार से आये हैं. बिहार में 'काल' पड़ा तो हम बेघर हो गये और यहां बस गये."

"कितने प्राणी हैं?" मैंने पूछा.

"बाल-बच्चे मिला कर कुल दस जन हैं." उसने सूप उछालते हाथ रोक कर जवाब दिया.

"क्या इस सड़े अनाज से गुजारा हो जाता है?" मेरी सवाल पूछने की हिम्मत बढ़ने लगी.

"बाबू, यही सड़ा अनाज उन दिनों बिहार में मिल गया होता तो हम बतन छोड़ कर क्यों आते? पेट की आग सड़ा-गला नहीं देखती. और अब तो यह अनाज हमारा धंधा बन गया है. और बाबू जो धंधा दो जून की रोटी इज्जत से दे दे वह बुरा नहीं होता. . ." उसके रुके हुए हाथ फिर चलने लगे थे. अचानक उसके हाथों में भर गयी तेजी को देख कर मैं समझ नहीं पाया कि यह किसी और सवाल का जवाब देगी या कहेगी, 'बाबू अब फूटो.

मैं अभी कुछ निर्णय नहीं कर पाया था कि जयनर की ओर से आगे बढ़ने का सिगनल मिल गया. जयनर से ही पता चला कि शाम को इसी अनाज को खरीदने यहां भीड़ लग जाती है क्योंकि साफ सुथरा दिखाई देता है और बाजार दर से सस्ता होता है. खरीददारों में सभी तबके के लोग होते हैं—छोटे व्यापारियों की पत्नियां, दफ्तर के बाबू और मजदूर. अलग-अलग ग्रेड के अनाज की अलग-अलग ढेरियां बन जाती हैं—कंकड़ वाला और बगैर कंकड़ वाला.

मैं सोच रहा हूं, पेट की आग कितनी तेजअसर होती है कि कंकड़, पत्थर मिट्टी, रेत सभी अनाज बन जाते हैं. अनाज और पेट का रिश्ता आदिम रिश्ता है और इस रिश्ते में कोई दरार नहीं पैदा कर सकता. राजधानी की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के बीच नये बाजार की सड़कों पर फैली यह 'सिला'-संस्कृति किन्हीं भी अर्थों में घटिया और कम महत्त्व की नहीं है. □

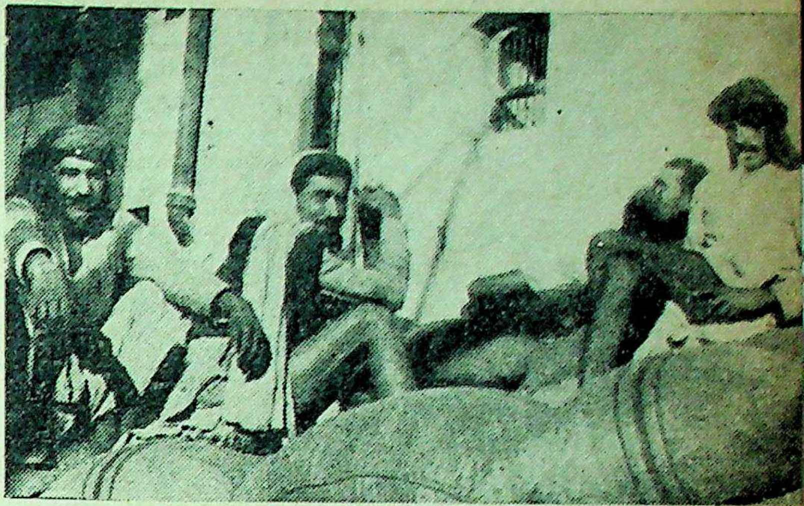

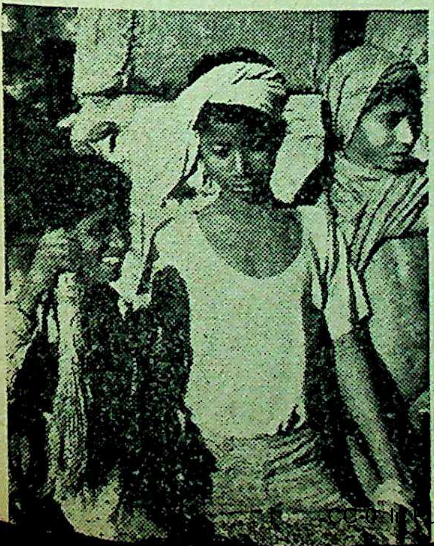

चित्र बायें से
- यह बोरी पीठ पर नहीं पेट पर है
- सड़क से बीनी दाल पीसती हुई महिला और ग्राहक
- पेट का बादशाह : इसे बच्चे बीन के लाये हैं
- कमर नहीं टूटेगी तो पेट टूटेगा–सुस्ताते पल्लेदार

▣ सभी चित्रों के छायाकार : धर्मवीर जयनर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

अनिल कुमार : सम्मान समारोह

भोपाल—हाल ही में तीन दिवसीय सम्मान–78 के समारोह में प्रखर साहित्यकार तथा एकमेव पैने कला-समीक्षक अनिल कुमार के 54 वर्ष पूरे करने पर एक अपूर्व, ऐतिहासिक एवं भव्य आयोजन किया गया. अशासकीय स्तर पर प्रतिभाओं के सम्मान में पहली बार शुरू की गयी इस पहल को आगे भी जारी रखने की घोषणा की गयी.

'गारुड़ मंत्र', 'इतिहास की परिक्रमा' और 'प्रणय-अंगार' जैसी समर्थ युग-बोधी कृतियों के रचयिता, सृजनात्मक और प्रदर्शनकारी कलाओं की एकमेव संघर्षशील लघु पत्रिका 'रंग-संधान' के सौजन्य संपादक—अनिल कुमार ने अपने सम्मान के उत्तर में कहा कि अभावों एवं तकलीफों ने कभी भी उनके लेखन को प्रभावित नहीं किया. उन्होंने बताया कि उनकी पहली रचना 1944 में 'वीर अर्जुन' में छपी थी. उनके बाद के प्रारंभिक एवं पूर्ववर्ती लेखन-प्रकाशन का उनके पास विस्तृत ब्यौरा नहीं है. आज उनकी अधिकांश रचनाएं अप्रकाशित हैं. समाज की इस प्रवृत्ति की निंदा करते हुए कि वह जिंदा या स्वस्थ आदमी का सम्मान नहीं करता और अपने इस सम्मान के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा कि मैं यह सब समाज को अर्पित करता हूं. प्रेमचंद मेरे लिए लेखन-आदर्श रहे हैं किंतु मैं अपने लिए दुष्यंत की मौत जैसी बहादुर मौत की कामना करता हूं...!

इस समारोह में अनिल कुमार को एक सुवैगा गाड़ी, एक शाल, चांदी में मढ़ा हुआ नारियल और रजत-पत्र दिये दिये गये. समारोह के मुख्य अतिथि थे संसद सदस्य श्री यमुना प्रसाद शास्त्री एवं अध्यक्षता सुकवि कला-मर्मज्ञ हरिभाऊ जो ने की. इस अवसर पर शताधिक कलाकारों, साहित्यकारों के अतिरिक्त रामचंद्र माहेश्वरी एवं सविता वाजपेयी भी उपस्थित थीं.

'जनधर्म' के संपादक कैलाश जोशी ने सम्मान के महत्व, औचित्य एवं अनिवार्यता पर प्रकाश डाला. 'नया नारा' के संपादक एवं अनिल कुमार सम्मान-संदर्भिका के नियामक श्री बाल मुकुंद भारती ने कहा कि अनिल कुमार जुझारू और मर्द साहित्यकार हैं.

डॉ. विनयमोहन शर्मा ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया. अध्यक्षीय भाषण में श्री हरिभाऊ जोशी ने कहा कि अनिल निरंतर समाज को सजग करते रहे हैं.

प्रारंभ में अनिल कुमार के दो प्रारंभिक गीत 'घिरा अंधेरा' और 'पंछी सोने का' स्वर-संयोजित किये गये. 'घिरा अंधेरा' को स्वर दिये थे—सर्वश्री तैलंग, ज्योतिरत्न और नीति शर्मा ने. 'पंछी सोने का' चमन भारती ने प्रस्तुत किया.

अगली सुबह जागरूक चित्रकार भाऊ समर्थ की सत्ताईस चित्रकृतियों की प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए श्री शीतला-सहाय ने कहा, "म. प्र. में पहली बार उनके चित्र प्रदर्शित हो रहे हैं. यह सिलसिला आगे भी चलता रहेगा." अनिल कुमार ने भाऊ समर्थ का परिचय देते हुए कहा कि वह अपूर्व लगन, अध्यवसाय, निष्ठा और लगन के अप्रतिम हस्ताक्षर हैं. उन्होंने तमाम प्रतिकूलताओं के बीच रह कर भी अपना निर्माण किया है और आज वे एक शैली और मुहावरा बन गये हैं.

तांत्रिक बिंबों की सामाजिकता

'अंतर्यात्रा' द्वारा अनिल कुमार की चुनी हुई कविताओं का सव्याख्या पाठ एवं उन पर चर्चा-परिचर्चा का आयोजन सुप्रसिद्ध कवि एवं 'शिवम्' के सौजन्य संपादक विनोद तिवारी की अध्यक्षता एवं रामप्रकाश त्रिपाठी के संचालन में किया गया. अनिल कुमार ने अपने पिछले 35 वर्षों की चुनी हुई कविताएं सुनायीं. इनमें—उप राष्ट्रकवि के प्रति, प्रेम कविताएं, सूरज उगेगा, जीवन एक तांत्रिक व्याख्या—आदि विशेष रूप से सराही गयीं. उन्होंने अपने तांत्रिक-बिंबों-प्रतीकों की प्रक्रिया समझाते हुए कहा कि 1960 के आसपास 12 वीं सदी में जैन आचार्य का लिखा एक ग्रंथ 'भैरव पद्मावती' हाथ आया. एक

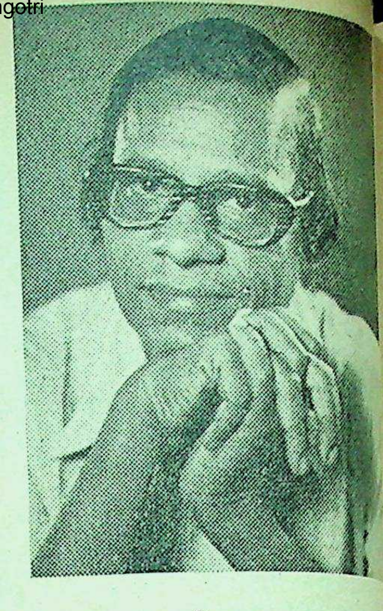

अनिल कुमार

अध्याय में 'गारुड विद्या' का कर्मकांड समझाया था. अमेरिका और रूस उन दिनों अणु परीक्षणों में संलग्न थे. 'गारुड मंत्र' जैसी तांत्रिक कविता इन्हीं अंतर्राष्ट्रीय विषम क्षणों की रचना है.

सतीश चतुर्वेदी और देवकीनंदन जोशी ने उनके कृतित्व की विभिन्न भंगिमाएं उद्घाटित कीं.

प्रमुख रंगकर्मी संस्था 'परिवर्तन' द्वारा इस अवसर पर 'औरत-75' (अनिल कुमार) का नाट्य पाठ किया गया. वाचक स्वर थे—मनोहर आशी और प्रशांत खिड़वड़कर. प्रशांत की ध्वनि और प्रकाश योजना उल्लेखनीय थी. इसी दिन 'अंधेर नगरी' (भारतेंदु हरिश्चंद्र) का भी जीवंत मंचन किया गया.

समारोह के तीसरे दिन रंगों के जादूगर भाऊ समर्थ ने कहा कि सभ्यता के नवनिर्माण में कला व साहित्य के आधारभूत योगदान करते हैं. कलाकार एक राडार की तरह संसार में घूमता है और प्रभाव ग्रहण करके अपनी कला के माध्यम से प्रतिक्रिया में व्यक्त करता हुआ नयी सभ्यता की प्रेरणा देता है. इस चर्चा में प्रसिद्ध कलाकार श्री डी. जोशी, रामप्रकाश, राजेश जोशी, महें कुमार मानव, एवं नवल जायसवाल ने भाग लिया. कार्यक्रम की सफलता में सर्वश्री कैलाश पंत, रमाकांत, राजें कुमार शर्मा, अशोक जैन, बालमुकुंद भारती का सहयोग उल्लेखनीय रहा.

विवरण : कृष्ण कमलेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवादी लेखक सम्मेलन : ग्वालियर

ग्वालियर. पिछले दिनों यहां 'अखिल भारतीय जनवादी लेखक सम्मेलन' अपनी ऐतिहासिक सफलता के साथ संपन्न हुआ. द्वि-दिवसीय इस लेखक सम्मेलन के पहले दिन 'जनवादी लेखन की समस्याएं' विषय पर सव्यसाची, जबरीमल पारख, और अनिल जनविजय ने पेपर पढ़े. मकबूल अहमद की अध्यक्षता में इस गोष्ठी का संचालन मनमोहन ने किया. 'सर्वहारा के नेतृत्व में साहित्यकारों की भूमिका' विषय पर हुई द्वितीय गोष्ठी में पहला पेपर रामबक्ष ने पढ़ा. कांतिमोहन का पेपर उनकी अनुपस्थिति में मनमोहन ने पढ़ा. इस गोष्ठी की अध्यक्षता मुकुट बिहारी 'सरोज' व संचालन सुधीश पचौरी ने किया. रात्रि आठ बजे संस्था 'रंगशिल्प' ने सत्येंद्र जैन के निर्देशन में रमेश उपाध्याय का नाटक 'गिरगिट' प्रस्तुत किया.

सम्मेलन के दूसरे दिन 'साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन' पर सुधीश पचौरी, कौशल मिश्र, निसार परवेज़ ने पेपर पढ़े. अध्यक्षता प्रकाश दीक्षित ने व संचालन जबरीमल पारख ने किया. 'साहित्य और राजनीति' पर हुए खुले अधिवेशन में रामबक्ष ने इस परिप्रेक्ष्य में आजादी से पहले और आज़ादी के बाद की स्थितियां स्पष्ट कीं. सुधीश पचौरी ने कहा, "साहित्य राजनीति का न सिर्फ अभिन्न अंग है वरन् दोनों एक दूसरे के पूरक हैं." इस गोष्ठी की अध्यक्षता युवा-कथाकार रमेश बत्तरा ने की. उन्होंने कहा, "समस्या चाहे भूख की हो या शिक्षा की और यहां तक कि प्रेम और विवाह की, यह राजनीति से जुड़ी है और इसमें निर्णायक भूमिका राजनीति की ही होती है." इस गोष्ठी का संचालन विमल किशोर ने किया.

कार्यक्रम के अंतिम दिन रात देर तक चलने वाले जनवादी कवि सम्मेलन (अध्यक्षता : विश्वामित्र वास्वानी, संचालन : मुकुट बिहारी 'सरोज') में मनमोहन, सुरेंद्र सुकुमार, रमेश पंडित, डा. अख्तर नज्मी, जहीर कुरैशी, प्रकाश मिश्र प्रदीप चौबे, घनश्याम भारती, योगेंद्र योगी आदि को श्रोताओं ने खूब सराहा. सम्मेलन का संयोजन हरीश तलवानी ने किया. □

विवरण : हरीश पाठक

सुधीश पचौरी, सव्यसाची, हरीश तलवानी, कैसर, हरीश पाठक, आजाद रामपुरी आदि की उपस्थिति में बोलते हुए—रामबक्ष

आल माई संस

'प्रयाग रंगमंच' द्वारा आर्थर मिलर का बहुचर्चित नाटक 'आल माई संस' का डॉ. जीवन लाल गुप्त द्वारा किया गया हिंदी रूपांतर 'सब मेरे बच्चे' 6 व 7 जनवरी को प्रयाग संगीत समिति प्रेक्षागृह में प्रस्तुत किया गया. इसका निर्देशन किया सूर्य प्रताप ने.

खोसला इस नाटक का केंद्रीय पात्र है जिसके चारों ओर नाटक बुना गया है. नाटक के अनुसार खोसला के चरित्र के चार आयाम हैं. एक जगह वे काइयां व्यावसायी हैं जो बिजनेस के चक्कर में दरार पड़े इक्कीस सिलिंडरों को जुड़वा कर सेना को सप्लाई कर देते हैं. दूसरी ओर वे एक परिवार से भी जुड़े हैं जिसके वे सर्वेसर्वा हैं. वे देश से बड़ा अपना परिवार मानते हैं लेकिन बाद में अपनी गलती महसूस करते हैं. रामचंद्र गुप्त खोसला की इन सारी मनःस्थितियों के अंतर्द्वंद को जीवंत नहीं बना सके. श्रीमती खोसला (जो अपने पति के अपराध को जानती हैं) के चरित्र के दो आयाम हैं जिनको शांति बेन (एकाध दृश्यों को छोड़कर) नहीं छू सकीं. रश्मि मालवीय ने अवश्य शीला की अति प्रभावी भूमिका निभायी है. सुनील (हर्ष) एक तिहाई नाटक के बाद अपने प्रवेश के साथ ही कथानक को समेट कर नाटक को क्लाइमेक्स पर पहुंचाता है. हर्ष जैसे बिल्कुल नये कलाकार ने अपने जीवंत अभिनय और संवादों के उतार-चढ़ाव, हाव-भाव से दूसरे पुराने कलाकारों के सामने एक चुनौती-सी दी है. शांति स्वरूप प्रधान (शुक्लाजी) तथा नगेश नाथ प्रसाद (डॉक्टर) 'ड्रेमेटिक रिलीफ' के रूप में प्रस्तुत किये गये थे और वे दर्शकों को हल्का हास्य देने में सफल रहे.

प्रकाश व्यवस्था ने अवश्य नाटक को उभारने में सहयोग दिया. कुल मिलाकर प्रयाग रंगमंच की यह प्रस्तुति, रूपांतर, निर्देशन तथा अभिनय तीनों दृष्टि से बहुत सफल नहीं कही जा सकती. लेकिन इलाहाबाद में कुछ हो रहा है, यही सोचकर संतोष कर लेना पड़ता है. □

विवरण : सतीश चित्रवंशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तकें

आदमी पर चारों तरफ से होते हुए आक्रमण!

▣ डॉ. विनय

सामान्यत: आज के कथा साहित्य की सर्जनात्मक संवेदना का केंद्र समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार से टकराता हुआ कोई सही व्यक्ति होता है. अर्थात समाज के विभिन्न स्तरों में विभिन्न प्रकार से भ्रष्ट आचरण व्याप्त है और उसमें वही व्यक्ति पनप सकता है, जो अपनी संवेदना को बुनियादी आवश्यकताओं के नीचे दबाकर, उसका अंग बन जाये. नहीं तो उसे सबसे अलग होना पड़ता है, आत्महत्या करनी पड़ती है, या अपनी जगह छोड़नी पड़ती है. इस दृष्टि से मॉरिशस के लेखक **अभिमन्यु अनत** का उपन्यास **कुहासे का दायरा** द्वीप की भ्रष्ट राजनीति के गुंजलक में संघर्षरत अध्यापक घनेश के माध्यम से व्यापक सामाजिक भ्रष्टाचार से परिचित कराता है. इस उपन्यास की विशेषता यह है कि यह हमें मॉरिशस के सामाजिक-राजनीतिक जीवन-यथार्थ से परिचित कराते हुए संघर्ष को मानवीय अस्मिता के साथ जोड़कर मूल्यों की चिंता तक ले जाता है. मानव मूल्यों की सुरक्षा एक ऐसे समाज में ही हो सकती है जहां शोषण न हो, या कम से कम हो. शोषण-संयुक्त समाज में अभाव ग्रस्त व्यक्ति ही नहीं टूटता, मूल्यों का क्षरण भी होता है और उससे एक व्यापक सांस्कृतिक पतन की शुरुआत होती है. सांस्कृतिक क्षरण राजनीतिक उत्थान-पतन की तरह अधिक मूर्त नहीं होता, लेकिन उसका दंश जातीयता की बहुत बड़ी हानि करता है.

इधर परिवार उधर व्यवस्था

'कुहासे का दायरा' का नायक घनेश एक स्कूल में अध्यापक है और सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति की तरह संघर्ष कर रहा है. उसका संघर्ष जो एक स्तर पर पारिवारिक या व्यक्तिगत लगता है, टकराहटों से घनत्व पाकर कहीं-कहीं व्यापक भी हो जाता है. उसके संघर्ष का एक छोर शांति और सीधू के परिवार से जुड़ा है और दूसरा व्यवस्था से. लेकिन दोनों के बीच व्यवस्था (राजनीतिक) ही सारे सूत्रों का संचालन करती है और सही व्यवस्था के निर्माण की कोशिश में लगा घनेश उस गुंजलक को अंत तक नहीं सुलझा पाता. यही व्यवस्था है जो सीधू को घर से बेघर कर देती है और सत्ता के विपरीत होने के कारण उसकी हत्या करवा दी जाती है. यही व्यवस्था है जो भिसम जैसे व्यक्ति को अनायास ही महत्वपूर्ण बना देती है और सामान्य सामाजिक मूल्य चटखते रहते हैं. इस व्यवस्था के हाथ इतने लंबे हैं कि घनेश को मिला नीरा के पिता का खेत, उससे छिन जाता है, और बदमाशों के विरुद्ध आक्रोशी मुद्रा अपनाने पर, वह मंत्री द्वारा भर्त्सना का शिकार होता है कि उसने बदमाशों का साथ दिया. यही नहीं उसकी मलमनसाहत परमचंद जैसे व्यापारिक व्यक्ति की कुदृष्टि का भी शिकार होती है. ऐसा लगता है जैसे एक सही व्यक्ति, मूल्य-चिंता से युक्त व्यक्ति, बीच में खड़ा है और चारों तरफ से हुए आक्रमण को झेल रहा है.

अभिशाप और सक्रियता

यह उपन्यास अपने छोटे-से फलक पर अनेक सामाजिक विसंगतियों को तो उघाड़ता है पर मानवीय संघर्ष को सही दिशा में रूपायित नहीं कर पाता, या कहना चाहिए कि विचार के स्तर पर मूल्यहीन जिम्मेवार पूंजीवादी, सामंती शासन के साथ किसी वर्ग-संघर्ष की मूर्त रेखाओं को स्पष्ट नहीं करता. लगता है कि सारा संघर्ष घनेश अकेला झेल रहा है और उसकी वर्गीय अनुभूति नहीं बन पाती. यही कारण है कि नीरा के विदेश चले जाने के बाद, उसके विश्वास को पाने के बाद, सामने शांति एक प्रश्न रखती है कि नीरा के पैसे से विदेश जाना चाहि... या शांति के! मैं यह नहीं कहता... उपन्यास का अंत नायक की ... वृत्ति का परिचायक है—लेकिन ... सच है कि उसकी संघर्षशील म... कहीं न कहीं टूटती दिखायी देती ... अपनी बात के प्रमाण में मैं उपन्यास ... पंक्तियां उद्धृत करना चाहूंगा—"... ही अस्वाभाविक ढंग से सोचना ... घनेश अपने को सभी चीजों, सभी ... से अलग मानने लगा था. अपने ... बहुत बड़ा अभिशाप मान चुकने ... भी सक्रिय रहना उसके लिए ... प्रतीत होने लगा."

सही व्यक्ति का शोचनीय ...

व्यवस्थागत भ्रष्टाचार के ... पिसती हुई एक लड़की रीना की ... **हिमांशु श्रीवास्तव** के उपन्यास ... की संवेदना का केंद्र है. 'रिह... लेखक ने रेडियो स्टेशन के संसा... व्याप्त अनेक विसंगतियों को ... बनाकर समाजगत व्यापक भ्रष्ट... से परिचय कराया है. मुख्य कथा ... बाबू के परिवार की है, जो आर्थिक ... से नितांत असंपन्न परिवार है. ... आर्थिक विपन्नता के कारण राखाल ... की छोटी लड़की बेला, अशोक बाबू ... घर का शिकार होती है और ... यहां तक दयनीय हो जाती हैं कि ... बाबू हिम्मत से स्थिति का सामना ... हुए पुत्री को मृत्यु की भेंट चढ़ने ... और इसके बाद प्रारंभ होता है ... संघर्ष का दौर—वह दो स्तरों ... असहायता और उससे उत्पन्न ... प्रक्रिया से लड़ती है, और दूसरी ... रेडियो स्टेशन की 'कैजुअल आर्टि... प्रति नीति से और बीच में प्रसं... आये उन सब मेहरबानों की ... वृत्ति से जो उसकी मदद करते ... उसके शरीर का उपयोग करना ... हैं. इन दोनों स्तरों पर एक ... (राखाल बाबू के) जेल जाने ... है. दूसरी, रीना का, रक्त बेचने ... अशक्त होकर मरने की सीमा ... लेकिन उपन्यासकार की संवेद...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल वही है—सामाजिक भ्रष्टाचार के बीच अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत सही व्यक्ति का शोचनीय अंत!

हिमांशु इस शोषण की व्यवस्था को दृढ़ बनाने वाली शक्तियों के विरुद्ध किसी भी प्रकार से कोई वैचारिक फ़लक नहीं दे पाते. उनकी भाषिक संरचना ही समकालीन अनुभव के विरुद्ध पड़ जाती है और गहराती स्थितियों को ऊपर से ही गुज़र जाने देती है.

चिथड़े-चिथड़े यथार्थ!

सामान्यतः किसी विशेष तंत्र को आधार बनाकर लिखे गये अनेक उपन्यासों में भावात्मक ऊष्णता और वैचारिक दृष्टि का सही परिप्रेक्ष्य में उभरना कला की प्रभविष्णुता के लिए आवश्यक होता है. **हृदयेश** के **सफेद घोड़ा काला सवार, योगेश गुप्त** के **उनका फैसला, अशोक अग्रवाल** के **वायदा माफ गवाह, निरुपमा सेवती** के **बंटता हुआ आदमी, हिमांशु जोशी** के **समय साक्षी है** और **बदीउज्जमा** के **छठा तंत्र** आदि उपन्यासों में जिस 'व्यवस्था-अंग' को कथा का केंद्र बनाया गया है, उसकी अभिव्यक्ति अत्यंत समर्थ शैली में संवेदना की व्यापकता के साथ की है. इन रचनाओं में यथार्थ चिथड़े-चिथड़े होकर आता है और लेखकीय दृष्टि, उस यथार्थ का सर्जनात्मक उपयोग न केवल मनुष्य की अस्मिता रक्षा की संघर्षशीलता में करती है, बल्कि एक मूल्य गर्भित संकेत करती हुई पाठक की सोच को एक दिशा देने का रचनात्मक दायित्व भी वहन करती है. यह दृष्टि 'रिहर्सल' में नहीं उभरी.

रीना के संघर्ष के रास्ते में हनुमान की गर्हित मांग, सेक्रेटरी वकील साहब का वासनात्मक प्रदर्शन—समाज के दुष्ट लोगों के मुखौटे तो उभारता है किंतु रीना की मूल्यवता का सर्जनात्मक उपयोग उपन्यास में क्या है? पाठक इससे वंचित रह जाता है. लेखक न तो अविनाश की सच्चाई और सज्जनता का सर्जनात्मक उपयोग कर पाया, न रीना की मूल्यवता का. उसकी सारी कथा का निचोड़ यह निकला—अविनाश का स्थानांतरण हो गया. घर में जो जुए का खेल प्रारंभ हुआ था, उस खेल ने खेल ही खेल में राखाल बाबू को जेल भेज दिया और सारी योग्यताओं में वरिष्ठ होकर भी रीना रेडियो स्टेशन में नौकरी नहीं पा सकी."—और अंत में रीना की मृत्यु एक हल्का त्रासद प्रभाव तो अवश्य छोड़ती है लेकिन पाठक की संघर्षशील वृत्ति को, संघर्ष को आगे बढ़ाने का न तो कोई वैचारिक बिंदु दे पाती है, न भाव गत ऊष्मा.

छोटी-छोटी कहानियों का समूह

जगदीशचंद्र पांडेय के उपन्यास **धरती और नींव** में निश्चित रूप से ऐसा कुछ नहीं है जिससे इसको समकालीन अनुभव की टकराहट की कृति कहा जा सके. पांडेय जी ने, हो सकता है अपने जीवनानुभव से या मात्र कल्पना से अशरफ जैसे उदार पैसे वाले चरित्र की सृष्टि की है. उपन्यास का संपूर्ण कथानक एक केंद्र से आगे बढ़ता है कि 'मैं' खान साहब के सेक्शन में स्थानांतरित हो कर आया है और उसने वहां पर खान साहब के विचित्र चरित्र से परिचय पाया. खान साहब के विषय में जानने के लिए बढ़ी उत्सुकता के कारण वह उनके निवास की ओर जाता है. इसके पूर्व वह अपने दफ्तर में एक तो खान साहब के कारनामों से चमत्कृत हो चुका है, दूसरे अपने साथियों से खान साहब की उदारता के विषय में जानकर सश्रद्ध भाव से और अधिक जानकारी के लिए उत्सुक होता है. और लगता है कि उपन्यास एक स्वतंत्र कथा नहीं अपितु कई छोटी-छोटी कहानियों का समूह है जिन्हें एक पात्र खान साहब से जोड़ देने के कारण एक जगह एकत्रित होने का अवसर मिल गया है. इस कथाक्रम में मुख्य रूप से सबसे पहले सक्सेना साहब अपनी कथा सुनाते हैं. और फिर अशरफ के परिवार में आये परिवर्तन को रेखांकित करते हैं. इसके बाद यह सिलसिला शुरू हो जाता है, तो दीप्ति, प्रोफेसर शेखर, चपरासी या माली डाकू, खजांची, खान साहब की मां और अंत में उनके पिता अलग-अलग तरीके से खान साहब के विषय में बताते हैं. पिता तो एक दार्शनिक की तरह यह भी कह देते हैं—"बेटा, यदि तुम इस बात को जान सको तो हमें भी बताना!"

चर्चित पुस्तकें

कुहासे का दायरा
● अभिमन्यु अनत
मूल्य : 12 रुपये

रिहर्सल
● हिमांशु श्रीवास्तव
मूल्य : 15 रुपये
प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली-6.

धरती और नींव
● जगदीशचंद्र पांडेय
मूल्य : 18 रुपये
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-2

खान साहब की कृपा से...

'धरती और नींव' के रचनाकार की दृष्टि एक ऐसे उदारवादी, सुधारवादी पात्र को प्रस्तुत करना था, जो धनी हो और मानवतावादी दृष्टि से व्यवहार करे—अतः समकालीन जीवन के संघर्ष को वह अपनी रचनात्मक भावाकुलता का आधार नहीं बना पाया. सारी छोटी-छोटी कहानियां क्योंकि सूचना रूप में या वर्णन के रूप में आती हैं अतः वे भी बीत चुकी होने के कारण कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़तीं. इस उपन्यास की शैली भी इसके थोड़े बहुत प्रभाव की संभावना को समाप्त कर देती है. प्रस्तुत रचना में अभावग्रस्त मनुष्य की अनेक पीड़ायुक्त स्थितियां आती हैं किंतु पाठक उन्हें स्थिति के रूप में न पाकर पीछे बीती हुई घटना के रूप में जानता है और वह भी तब, जब सब कुछ ठीक हो जाता है—खान साहब की कृपा से!

इस आदर्श स्थिति को रचनात्मक अनुभव बनाने के लिए जिस कलात्मक संयोजन की जरूरत होती है, इस रचना में उस संयोजन से परिचय नहीं हो पाता.

समग्रतः आलोच्य उपन्यास विभिन्न दृष्टियों से जीवन को परखते हैं. किंतु औपन्यासिक कलात्मक गरिमा में कहीं न कहीं भारी चूक होने के कारण रचनात्मक प्रासंगिकता खो देते हैं. केवल अभिमन्यु अनत का 'कुहासे का दायरा' ही प्रासंगिक रह पाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस अगला ही अंक

सारिका

मोहन राकेश, दुष्यंतकुमार, यशपाल, तॉलस्तोय और रेणु सरीखे कवि-कथा मनीषियों की संपूर्ण रचनाधर्मिता के संदर्भ में प्रकाशित विशेषांकों की गौरवशाली परंपरा के तहत अब एक और भेंट—मंटो विशेषांक!

▣

"मैंने जो रेडियो नाटक लिखे हैं, वे रोटी के मसले की पैदावार हैं. दाद इस बात की चाहता हूं कि मेरे दिमाग ने मेरे पेट में घुसकर ऐसे हास्य-नाटक लिखे हैं, जो दूसरों को हंसाते रहे हैं, पर मेरे होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट भी पैदा नहीं कर सके...!"

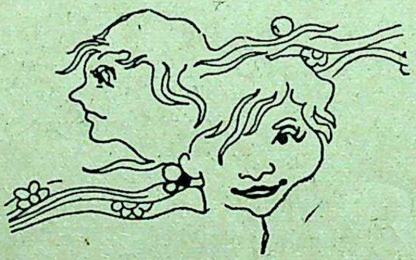

▣ देख कबीरा रोया :

मंटो के छोटे छोटे राजनीतिक व्यंग्य

▣ हास्य एकांकी :

आओ कहानी लिखें और खुदकशी.

▣ संस्मरण :

- **तुम साहित्य के विदेश मंत्री और हम गृहमंत्री हैं!** —अहमद नदीम कासमी के संस्मरण.
- **मंटो मामू की मौत!** —मंटो के अंतिम दिनों की जानकारी उनके भांजे हामिद जलाल की कलम से.
- **आपने क्या फैसला किया?**— मंटो की ही एक कहानी के संदर्भ में मंटो और एक संपादक के बीच हुई बातचीत का ब्यौरा.
- **मंटो की बातें :** समकालीन कथाकारों पर मंटो द्वारा उछाले गये हंसी के छींटे! —प्रस्तोता : सुरजीत

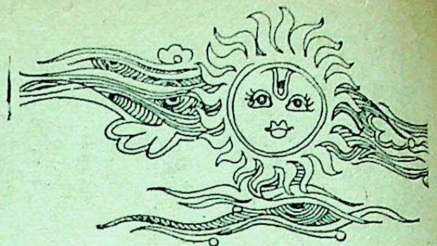

मंटो विशेषांक

मई : अंक-दो

—अक्खड़ मगर सच्चाइयों से लबरेज़ कहा[नी]कार मंटो की बेरहम तथ्यपरक कहानियां- **खोल दो, शरीफन, नया कानून, खुशिया, [...] कौमें, काली सलवार और फूलों की साज़[िश]**

▣ मील का पत्थर :

प्रख्यात कथाकार उपेंद्रनाथ अश्क द्वारा प्रस्तुत [...] कसौटी पर मंटो की सर्वोत्तम कहानी—मंत्र

▣ ललित लेख :

- **मैं कहानीकार नहीं, जेबकतरा हूं!**
- **अदब या तो अदब होता है, वरना एक बहुत बड़ी बेअदबी!**
- **अफसाना-निगार और जिंसी मसाइल!**
- **पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम : पंडित मंटो का पहला खत!**

परिचर्चा :

मंटो उर्दू अदब का मसीहा या शैतान

उर्दू के धुरंधर विद्वानों की बातचीत— प्रस्तोता : **कमलकिशोर गोयनका**

अन्य स्थायी स्तंभ भी

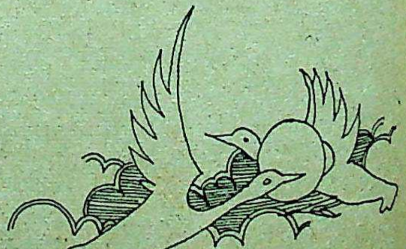

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करवाइये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मम्मी ! मैं ३ महीने का हो चुका हूँ !'

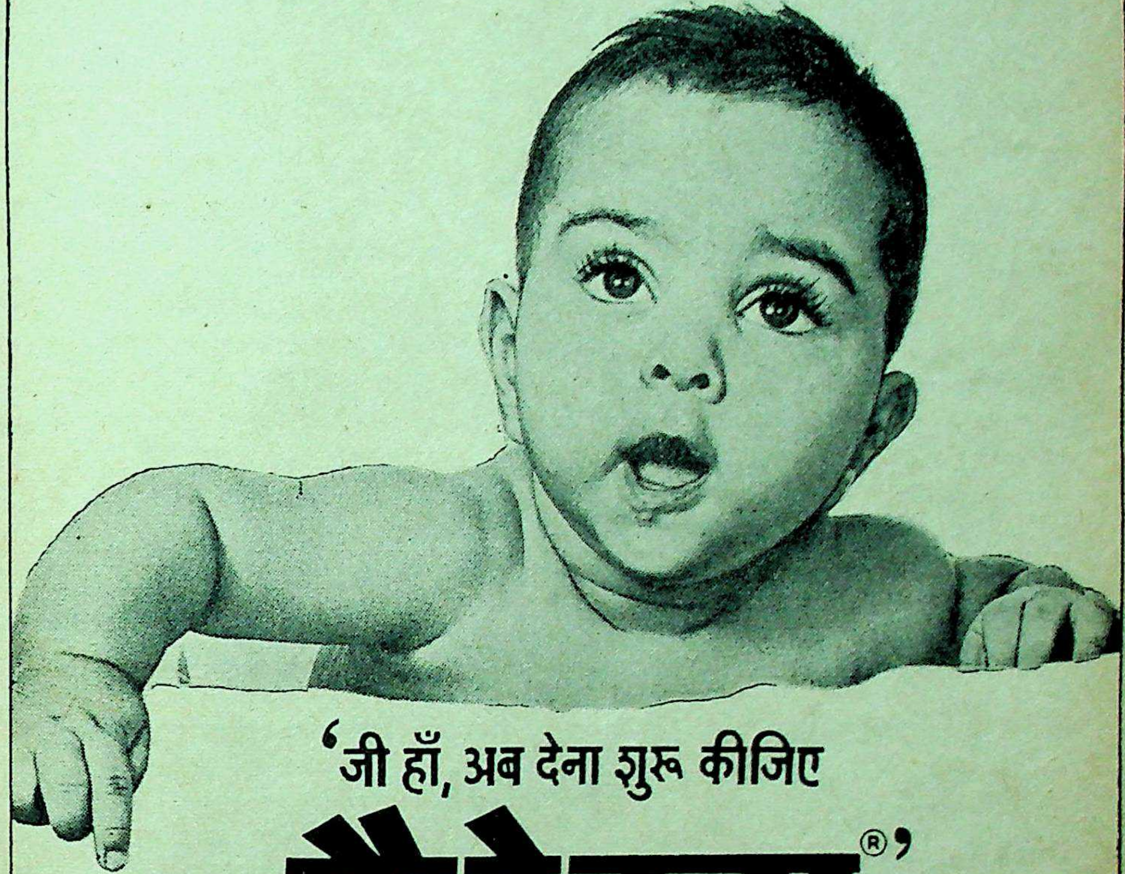

'जी हाँ, अब देना शुरू कीजिए

फ़ैरेक्स®'

मुन्ने के ठोस आहार की शुरुआत के लिए
डॉक्टरों की सिफ़ारिश है **फ़ैरेक्स®**

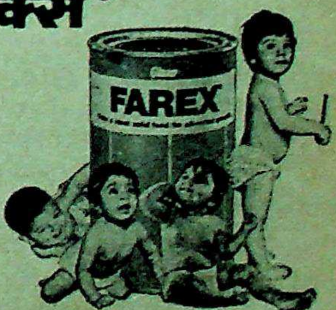

मुन्ने का आदर्श ठोस आहार
जल्द और सर्वांगीण विकास के लिए

लिंटास-GLF. 65-2114 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशवर्धिनी

आपके बालों के तेल में अतिरिक्त गुणों का मेल बढ़ाए—प्रतिदिन आपके बाल अधिक स्वस्थ, अधिक लंबे बनाए.

बालों के लिए दक्षिण भारत का पारम्परिक सौंदर्य रहस्य······केशवर्धिनी, बालों के किसी भी 'प्राकृतिक' तेल (जैसे नारियल) के साथ इसे मिलाइए और बालों की जड़ों में रोज़ मालिश कीजिए. फिर देख लीजिए बालों का गिरना बंद और बालों का स्वस्थ, सुंदर होना शुरू. केशवर्धिनी का व्यवहार अभी शुरू कर दीजिए.

केशवर्धिनी प्रॉडक्ट्स,
आर्काट रोड, मद्रास-६०० ०८७.

सै डो ज इं डि या

स्वनियंत्रित, दिन और तिथि, चाबी वाली जेंट्स और लेडीज

घड़ियां

सभी प्रमुख घड़ी स्टोरों पर उपलब्ध

सेल्स आफिस : ११३९ चांदनी चौक, दिल्ली—११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह संयोग नहीं!

सुनियोजित समाधान...

Happiness begins with marriage
Happy marriages begin with the
TIMES OF INDIA

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली

विवाह । आपके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण फेसला । आपके सुखी जीवन का स्थाई आधार । जन्म पत्री के मिलने से जीवन साथी तो मिल सकता है परन्तु उससे अधिक ज़रूरी है उन लोगों से सम्पर्क करना जिनमें से आप उचित चुनाव कर सकें।

क्या आप सब कुछ संयोग पर छोड़ देंगे ? या सूझ बूझ से समस्या का समाधान करेंगे ?

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली में दिये गये वैवाहिक विज्ञापन उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाना, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश तथा अन्य क्षेत्रों के लगभग १,६०,००० कुलीन तथा खुशहाल परिवारों में पढ़े जाते हैं। इन पाठकों की संख्या ८ लाख से भी अधिक है।

इन परिवारों की भी एक चिंता है। अपनी लड़की, अथवा अपने लड़के, के लिये सुयोग्य जीवन साथी ढूंढने की।

आइये और अपनी चिंता हमारे हवाले कीजिये।

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली के माध्यम से लाखों परिवारों के सुख की नींव पड़ी है। कोई भी अखबार इतने संपन्न परिवारों तक आपको नहीं पहुंचा सकता।

वर्गीकृत वैवाहिक विज्ञापन आप :

- हमारे कार्यालय में स्वयं आकर दे सकते हैं,
- डाक द्वारा भेज सकते हैं,

अथवा

- टेलीफोन पर बुक कर सकते हैं। (यह सुविधा केवल दिल्ली, शाहदरा, बल्लभगढ़, फरीदाबाद तथा गाज़ियाबाद के वर्गीकृत विज्ञापनदाताओं के लिये उपलब्ध है।)
- फोन : २७३५२०, २७०१६१ एक्सटेन्शन-२२७।

आप किसी भी भाषा में अपना विज्ञापन भेजें, अंग्रेज़ी में अनुवाद हम करेंगे। यह सेवा निःशुल्क है।

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली

वर्गीकृत विज्ञापन विभाग
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-११० ००२
फोन : २७३५२०, २७०१६१ एक्सटेन्शन २२७

में वैवाहिक विज्ञापन दीजिये, अपने सुखी भविष्य से नाता जोड़िये।

Headstart TOI/7918

कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : ...म तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, ...बाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 15, मोंटियथ रोड, इग्मोर, ...-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति–लाइसेंस सं. U-89

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar